

## **Chapter उन्तीस**

### **रासनृत्य के लिए कृष्ण तथा गोपियों का मिलन**

इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण रासनृत्य का आनन्द लेने की इच्छा से किस तरह गोपियों से तर्क-वितर्क करते हैं। तत्पश्चात् रासनृत्य के शुभारम्भ एवं गोपियों के बीच से

भगवान् के अन्तर्धान होने की लीला का विवरण दिया गया है।

भगवान् कृष्ण ने गोपियों के वस्त्रहरण के समय उन्हें जो वचन दिया था उसका स्मरण करके अपनी योग-मायाशक्ति से अपने भीतर शरद रात्रि में लीलाएँ करने की इच्छा उत्पन्न की। अतः वे अपनी बाँसुरी बजाने लगे। जब गोपियों ने बाँसुरी की ध्वनि सुनी तो उनके भीतर तीव्र कामभावना उमड़ने लगी और वे तुरन्त अपने घर के कामकाज छोड़ कर तेजी से कृष्ण के पास गईं। यद्यपि सारी गोपियों के शरीर नितान्त आध्यात्मिक थे किन्तु जब कुछ गोपियों के पतियों तथा अन्य घर वालों ने उन्हें जाने से रोका तो भगवान् कृष्ण ने अल्पकाल के लिए उन्हें भौतिक शरीर प्रदान किए जिन्हें वे अपने पतियों के पास छोड़ आईं। इस तरह अपने सम्बन्धियों को छलकर वे कृष्ण से मिलने चली गईं।

जब गोपियाँ भगवान् कृष्ण के समक्ष आईं तो उन्होंने पूछा, “तुम क्यों आई हो? आधी रात में ऐसे स्थान तक आना तुम लोगों के लिए ठीक नहीं है क्योंकि यह जंगल हिंस्र पशुओं से भरा है। तुम लोगों के पति तथा बच्चे तुम्हें घर वापस ले जाने और फिर से घरेलू काम-काज में लगाने के लिए तुम्हें ढूँढ़ते हुए आते ही होंगे। फिर स्त्री का मुख्य धर्म अपने पति तथा बच्चों की सेवा करना है। किसी भद्र महिला के लिए जारपति के साथ प्रेम-क्रीड़ा करना सर्वथा निन्दनीय है और इससे उसे स्वर्ग जाने में बाधा पहुँचती है। यही नहीं, शारीरिक निकटता स्थापित करने से ही मेरे प्रति शुद्ध प्रेम उत्पन्न नहीं होता अपितु मेरी कथाओं को सुनने, मन्दिर में मेरे अर्चाविग्रह का दर्शन करने, मेरा ध्यान करने तथा मेरे यश का गान करने से शुद्ध प्रेम उत्पन्न किया जा सकता है। अतएव अच्छा यही होगा कि तुम लोग घर लौट जाओ।”

यह सुनकर गोपियों का मुँह लटक गया और कुछ रो लेने के बाद कुछ क्रोध में आकर बोलीं, “यह आपके लिए अशोभनीय है कि जो युवतियाँ अपने जीवन का सर्वस्व न्यौछावर करके एकमात्र आपकी सेवा करने के उद्देश्य से आपके पास आई हैं उन्हें आप इस तरह टुकरा दें। हम अपने पतियों तथा बच्चों की सेवा करके केवल पीड़ा प्राप्त करती हैं किन्तु समस्त जीवों के सर्वप्रिय आपकी सेवा करके हम अपने असली धर्म को पूरा करेंगी। भला ऐसी कौन स्त्री है, जो आपकी बाँसुरी का संगीत सुनकर और तीनों जगत को मोहने वाले आपके रूप को देखकर अपने नियत कार्यों को भूल न जाये? जिस तरह भगवान् विष्णु देवताओं की रक्षा करते हैं उसी तरह आप वृन्दावनवासियों के दुखों का

विनाश करते हैं। अतएव आपके विछोह के कारण हमने जो पीड़ा सही है उससे हमें तुरन्त मुक्त कीजिये।”

गोपियों को प्रसन्न करने की इच्छा से भगवान् कृष्ण ने जो सदा स्वयं में तुष्ट रहते हैं उनके साथ विविध क्रीड़ाएँ करने की उनकी याचना मान ली। किन्तु इस स्वीकृति से गोपियों में थोड़ा गर्व आ गया अतएव कृष्ण ने रासनृत्य स्थली से सहसा अन्तर्धान होकर उन्हें विनीत बना दिया।

श्रीबादरायणिरुवाच

भगवानपि ता रात्रीः शारदोत्फुल्लमल्लिकाः ।  
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्रील बादरायण व्यासदेव के पुत्र श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; भगवान्—कृष्ण; अपि—यद्यपि; ताः—वे; रात्रीः—रातें; शारद—शरदकालीन; उत्फुल्ल—खिले; मल्लिकाः—चमेली के फूल; वीक्ष्य—देखकर; रन्तुम्—प्रेम का आनन्द लेने के लिए; मनः चक्रे—मन में निश्चय किया; योगमायाम्—असम्भव को सम्भव बनाने वाली उनकी आध्यात्मिक शक्ति का; उपाश्रितः—सहारा लेकर।

श्रीबादरायणि ने कहा : श्रीकृष्ण समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण भगवान् हैं फिर भी खिलते हुए चमेली के फूलों से महकती उन शरदकालीन रातों को देखकर उन्होंने अपने मन को प्रेम-व्यापार की ओर मोड़ा। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपनी अन्तरंगा शक्ति का उपयोग किया।

तात्पर्य : ज्योंही हम भगवान् कृष्ण के सुन्दर युवतियों के साथ प्रेम-नृत्य अथवा रासनृत्य की सुप्रसिद्ध कथा प्रारम्भ करते हैं, तो सामान्य लोगों के मन में शरद की पूर्णिमा की अर्धरात्रि में अनेक युवतियों के साथ ईश्वर के इस प्रेममय नृत्य के औचित्य के विषय में विविध प्रश्न उठेंगे। श्रील प्रभुपाद ने अपनी पुस्तक भगवान् श्रीकृष्ण में भगवान् के रासनृत्य का वर्णन करते हुए इसकी आध्यात्मिक पवित्रता की व्याख्या की है। कृष्णभावनामृत में उन्नत आचार्यों को इस विषय में कोई सन्देह नहीं है कि भगवान् कृष्ण पूर्ण और आत्मतुष्ट हैं और उन समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त हैं, जिन्हें एक प्रकार से अपूर्णता का सूचक माना जाता है।

भौतिकतावादी व्यक्ति तथा निर्विशेष दार्शनिकजन श्रीकृष्ण के दिव्य स्वभाव की प्रामाणिक व्याख्या को बुरी तरह से अस्वीकार करते हैं। किसी ऐसे परम पुरुष की उत्तम वास्तविकता को, जो नितान्त प्रेममय कार्यकलाप सम्पन्न कर सकता है, अस्वीकार करना तर्कयुक्त नहीं प्रतीत होता जबकि हमारा तथाकथित प्रेमालाप कोरा या विकृत प्रतिबिम्ब है। भौतिक कार्यकलाप ईश्वर द्वारा सम्पन्न पूर्ण

आध्यात्मिक कार्यों का प्रतिबिम्ब हो ही नहीं सकता—इस पर अड़े रहना उन लोगों की अकल्पनीय भावदशा को प्रतिबिम्बित करता है, जो श्रीकृष्ण की वास्तविकता का विरोध करते हैं। अभक्तों की यह मनोवैज्ञानिक मनोवृत्ति दुर्भाग्यवश ईर्ष्या के रूप में उबल पड़ती है, जिसके परिणामस्वरूप वे परम पुरुष के अस्तित्व को जोर शोर से नकारते हैं, क्योंकि अधिकांश निर्विशेषवादी आलोचक अपने ही प्रेमालापों का अनुगमन करते हैं, जिन्हें वे वास्तविक और आध्यात्मिक भी मानते हैं।

वास्तविक परम प्रेमी तो भगवान् कृष्ण हैं। वेदान्त सूत्र का शुभारम्भ इस घोषणा के साथ होता है कि परब्रह्म ही समस्त वस्तुओं के उद्गम हैं। यहाँ तक कि पाश्चात्य दर्शन का जन्म इस प्रत्यक्ष जगत के 'अनेक' के आधार आदि 'एक' की भद्दी खोज के प्रयास में हुआ। माधुर्य प्रेम जो कि मनुष्य का महत्त्वपूर्ण पहलू है उसे परम सत्य से कुछ भी लेना-देना नहीं है।

वास्तव में मनुष्यों द्वारा अनुभूत माधुर्य प्रेम उस आध्यात्मिक सत्य का प्रतिबिम्ब मात्र है, जिसमें यही प्रेम अपनी परम अवस्था में रहता है। इस प्रकार यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि जब कृष्ण ने शरदकालीन मादक वातावरण का आनन्द लेने का निश्चय किया, तो उन्होंने अपनी आध्यात्मिक शक्ति का आश्रय लिया (योगमायामुपाश्रितः)। श्रीमद्भागवत के इस अध्याय में कृष्ण के माधुर्य प्रेम की आध्यात्मिक प्रकृति मुख्य विषयवस्तु है।

कोई स्त्री अपनी मधुर वाणी, अपने सौन्दर्य तथा शालीनता, अपनी मोहक सुगन्धि तथा सुकुमारपन के साथ ही अपनी चातुरी तथा संगीत-नृत्य में दक्षता के कारण आकर्षक लगती है। इन सबों में वृन्दावन की तरुणी गोपिकाएँ, जो कि कृष्ण की अन्तरंगा शक्ति हैं, सर्वाधिक आकर्षक हैं। इस अध्याय में यही बतलाया गया है कि किस तरह कृष्ण ने उनके स्त्री सुलभ उत्तम गुणों का आनन्द लिया यद्यपि इन घटनाओं के समय श्रीकृष्ण केवल आठ वर्ष के बालक थे, जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने उल्लेख किया है।

सामान्य लोग यही चाहते हैं कि ईश्वर उनके प्रेमालापों के साक्षी बनें। जब कोई लड़का किसी लड़की को या कोई लड़की किसी लड़के को चाहती है, तो वे अपने आनन्द-भोग के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। ऐसे लोगों को यह जानकर धक्का लगता है और बड़े निराश हो उठते हैं कि भगवान् अपनी दिव्य इन्द्रियों द्वारा अपने ही प्रेमालापों का आनन्द भोग सकते हैं। सच तो यह है कि श्रीकृष्ण

आदि कामदेव हैं और उनकी उत्तेजक माधुर्य लीलाओं का वर्णन इस अध्याय में किया जायेगा।

जब भगवान् कृष्ण पृथ्वी पर अवतरित होते हैं, तो उनका आध्यात्मिक शरीर जन्म लेता हुआ तथा उनके द्वारा विविध लीलाओं के प्रदर्शन के साथ विकास करता हुआ प्रतीत होता है। भगवान् अपने बाल्यकाल को एक युवक तथा युवतियों के मध्य परम प्रेमालाप को प्रदर्शित किये बिना कैसे बीत जाने देते। इसीलिए विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने श्रील रूप गोस्वामी का वक्तव्य उद्धृत किया है—*कैशारं सफलीकरोति कलयन् कुञ्जे विहारं हरिः*—भगवान् हरि वृन्दावन के कुञ्जों में विहार (प्रेमलीला) करके अपनी कैशोरावस्था को सफल बनाते हैं।

तदोदुराजः ककुभः करैर्मुखं

प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः ।

स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्

प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥

#### शब्दार्थ

तदा—उस समय; उदु-राजः—तारों का राजा, चन्द्रमा; ककुभः—क्षितिज का; करैः—अपने “हाथों” (किरणों) से; मुखम्—मुखमण्डल; प्राच्याः—पश्चिमी; विलिम्पन्—रंजित करते हुए; अरुणेन—लाल रंग से; शम्-तमैः—अत्यन्त आराम पहुँचाने वाली (किरणों) से; सः—वह; चर्षणीनाम्—देखने वालों के; उदगात्—उदय हुआ; शुचः—दुख; मृजन्—मिटते हुए; प्रियः—प्रिय पति; प्रियायाः—अपनी प्रियतमा पत्नी का; इव—सदृश; दीर्घ—काफी देर बाद; दर्शनः—फिर से देखे जाने पर।

तब चन्द्रमा अपनी लाल रंग की सुखदायी किरणों से पश्चिमी क्षितिज को रंजित करते हुए उदय हुआ और इस तरह उसने उदय होते देखने वालों की पीड़ा दूर कर दी। यह चन्द्रमा उस प्रिय पति के समान था, जो दीर्घकालीन अनुपस्थिति के बाद घर लौटता है और अपनी प्रियतमा पत्नी के मुखमण्डल को लाल कुंकुम से सँवारता है।

तात्पर्य : किशोर कृष्ण ने अपनी अन्तरंगा शक्ति का प्रयोग किया और उसने तुरन्त माधुर्य प्रेम के उपयुक्त उत्तेजक वातावरण की सृष्टि कर दी।

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं

रमाननाभं नवकुङ्कु मारुणम् ।

वनं च तत्कोमलगोभी रञ्जितं

जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥

#### शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; कमुत्-वन्तम्—रात्रि में खिलने वाले कुमुद फूलों को खोलता हुआ; अखण्ड—अटूट; मण्डलम्—मुख का गोला; रमा—लक्ष्मी के; आनन—मुखमण्डल ( सट्टा ); आभम्—जिसका प्रकाश; नव—नया; कुङ्कुम—सिंदूर से; अरुणम्—लाल हुआ; वनम्—वन को; च—तथा; तत्—उस चन्द्रमा का; कोमल—सुकुमार; गोभिः—किरणों से; रञ्जितम्—रंगा हुआ; जगौ—वंशी बजाई; कलम्—सुरीली; वाम-दशाम्—मोहक नेत्रों वाली तरुणियों के लिए; मनः-हरम्—मुग्ध करने वाली ।

भगवान् कृष्ण ने नवलेपित सिंदूर के लाल तेज से चमकते पूर्ण चन्द्रमा के अविच्छिन्न मण्डल को देखा। ऐसा लग रहा था मानो लक्ष्मीजी का मुखमण्डल हो। उन्होंने चन्द्रमा की उपस्थिति से खिलने वाले कुमुदों को तथा उसकी किरणों से मन्द मन्द प्रकाशित जंगल को भी देखा। इस तरह भगवान् ने अपनी वंशी पर सुन्दर नेत्रों वाली गोपियों के मन को आकृष्ट करने वाली मधुर तान छेड़ दी।

तात्पर्य : इस श्लोक का जगौ शब्द यह बताता है कि कृष्ण ने अपनी बाँसुरी पर गीत बजाये जैसाकि श्लोक ४० में आये हुए शब्दों—का स्त्रयङ्ग ते कलपदायतवेणुगीत—से पुष्टि होती है। रमा शब्द से न केवल विष्णु की प्रियतमा का अपितु आदि लक्ष्मी देवी श्रीमती राधारानी का भी बोध होता है। कृष्ण का जन्म चन्द्रवंश में हुआ था और रासनृत्य में प्रवेश करते समय यहाँ पर चन्द्रमा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

निशाम्य गीतां तदनङ्गवर्धनं

व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ।

आजगुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः

स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

निशाम्य—सुनकर; गीतम्—संगीत; तत्—वह; अनङ्ग—कामदेव को; वर्धनम्—प्रबल करने वाला; व्रज-स्त्रियः—व्रज की युवतियाँ; कृष्ण—कृष्ण द्वारा; गृहीत—जकड़ी; मानसाः—मन वाली; आजगमुः—गई; अन्योन्यम्—एक-दूसरे से; अलक्षित—अनदेखी; उद्यमाः—आगे बढ़ती; सः—वह; यत्र—जहाँ; कान्तः—उनका बाल-सखा; जव—जल्दी के कारण; लोल—हिलते हुए; कुण्डलाः—कान के कुण्डल ।

जब वृन्दावन की युवतियों ने कृष्ण की बाँसुरी का संगीत सुना जो प्रेम-भावनाओं को उत्तेजित करता है, तो उनके मन भगवान् द्वारा वशीभूत कर लिये गये। वे वहीं चली गईं जहाँ उनका प्रियतम बाट जोह रहा था। वे एक-दूसरे की अनदेखी करके इतनी तेजी से आगे बढ़ रही थीं कि उनके कान की बालियाँ आगे-पीछे हिल-डुल रही थीं।

तात्पर्य : ऐसा लगता है कि प्रत्येक गोपी छिपकर गई जिससे उसकी प्रतिद्वंद्वी जान न पायें कि

कृष्ण प्रेमालाप के प्रति उन्मुख हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस स्थिति का वर्णन इस तरह पद्यबद्ध किया है :

कृष्ण ने अपनी वंशी बजाकर वृन्दावन में भीषण चौरकर्म के लिए उत्तेजित कर दिया। उनकी वंशी का गीत गोपियों के कानों से होकर सीधे हृदयों में जाकर बिंध गया। उस अद्भुत संगीत ने उनका सबकुछ—उनकी गम्भीरता, लज्जा, भय, विवेक तथा मन तक को भी—चुरा लिया और एक ही क्षण में इस संगीत ने ये सबकुछ कृष्ण के पास पहुँचा दिया। प्रत्येक गोपी कृष्ण से अपनी निजी निधि लौटाने की याचना करने गई। हर सुन्दर युवती यही सोच रही थी, “मुझे उस महान् चोर को पकड़ना है” और इस तरह वे एक-दूसरे के अनजाने में आगे बढ़ती गई।”

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः ।

पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥ ५ ॥

#### शब्दार्थ

दुहन्त्यः—दुहने के बीच में ही; अभिययुः—चली गई; काश्चित्—उनमें से कुछ; दोहम्—दुहना; हित्वा—त्यागकर; समुत्सुकाः—अत्यधिक उत्सुक; पयः—दूध; अधिश्रित्य—चूल्हे पर रखकर; संयावम्—आटे की बनी रोटियों ( हलवा ); अनुद्वास्य—चूल्हे से उतारे बिना; अपराः—अन्य; ययुः—चली गई।

कुछ गोपियाँ दूध दुह रही थीं जब उन्होंने कृष्ण की बाँसुरी सुनी। उन्होंने दुहना बन्द कर दिया और वे कृष्ण से मिलने चली गईं। कुछ ने चूल्हे पर दूध को उबलते छोड़ दिया और कई ने चूल्हें में रोटियों को सिकते हुए छोड़ दिया।

तात्पर्य : यहाँ किशोर कृष्ण के प्रति प्रेमपूर्वक अनुरक्त इन गोपियों की उत्सुकता को दिखलाया गया है।

परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून्ययः ।

शुश्रूषन्त्यः पतीन्काश्चिदशनन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥ ६ ॥

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने ।

व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित्कृष्णान्तिकं ययुः ॥ ७ ॥

#### शब्दार्थ

परिवेषयन्त्यः—वस्त्र पहने; तत्—उसे; हित्वा—एक ओर रखकर; पाययन्त्यः—पिलाती हुई; शिशून्—अपने शिशुओं को; पयः—दूध; शुश्रूषन्त्यः—सेवा करती हुई; पतीन्—अपने पतियों की; काश्चित्—उनमें से कुछ; अशनन्त्यः—खाती हुई; अपास्य—छोड़कर; भोजनम्—अपने अपने भोजन; लिम्पन्त्यः—अंगराग लगाये; प्रमृजन्त्यः—तेल लगाती; अन्याः—अन्य;

अञ्जन्यः—कज्जल लगाती; काश्च—कुछ; लोचने—अपनी आँखों में; व्यत्यस्त—अस्त-व्यस्त; वस्त्र—कपड़े; आभरणाः—  
तथा गहने; काश्चित्—उनमें से कुछ; कृष्ण-अन्तिकम्—कृष्ण के निकट तक; ययुः—गई।

उनमें से कुछ वस्त्र पहन रही थीं, कुछ अपने बच्चों को दूध पिला रही थीं या अपने पतियों की सेवा में लगी थीं किन्तु सबों ने अपने-अपने कार्य छोड़ दिये और वे कृष्ण से मिलने चली गईं। कुछ गोपियाँ शाम का भोजन कर रही थीं, कुछ नहा-धोकर शरीर में अंगराग या अपनी आँखों में कज्जल लगा रही थीं। किन्तु सबों ने तुरन्त अपने अपने कार्य बन्द कर दिये और यद्यपि उनके वस्त्र तथा गहने अस्त-व्यस्त थे वे कृष्ण के पास दौड़ी गईं।

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ।

गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥ ८ ॥

#### शब्दार्थ

ताः—वे; वार्यमाणाः—रोके जाने पर; पतिभिः—अपने पतियों द्वारा; पितृभिः—अपने पिताओं द्वारा; भ्रातृ—भाई; बन्धुभिः—  
तथा अन्य सम्बन्धियों द्वारा; गोविन्द—कृष्ण द्वारा; अपहृत—चुराई गई; आत्मानः—स्वयं से; न न्यवर्तन्त—वापस नहीं आईं;  
मोहिताः—मोहित।

उनके पतियों, पिताओं, भाइयों तथा अन्य सम्बन्धियों ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया किन्तु कृष्ण उनके हृदयों को पहले ही चुरा चुके थे। उनकी बाँसुरी की ध्वनि से मोहित होकर उन्होंने लौटने से इनकार कर दिया।

तात्पर्य : कुछ तरुणी गोपिकाएँ विवाहिता थीं जिनके पतियों ने उन्हें रोकने का प्रयास किया। अविवाहिताओं को अपने अपने पिता, भाई तथा अन्य सम्बन्धियों से निपटना पड़ा। सम्बन्धियों में से कोई भी सामान्य रूप से इन तरुणियों के मृत शरीरों को भी रात्रि में जंगल न जाने देता किन्तु कृष्ण ने पहले से ही अपनी अन्तरंगा शक्ति लगा रखी थी जिससे समस्त प्रेम-व्यापार का अध्याय बिना किसी अवरोध के उद्घाटित हो गया।

अन्तर्गृहगताः काश्चिद्गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ।

कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ ९ ॥

#### शब्दार्थ

अन्तः-गृह—अपने घरों के भीतर; गताः—उपस्थित; काश्चित्—कुछ; गोप्यः—गोपियाँ; अलब्ध—न प्राप्त करके;  
विनिर्गमाः—रास्ता; कृष्णम्—श्रीकृष्ण पर; तत्-भावना—उनके प्रति भावात्मक प्रेम से; युक्ताः—युक्त; दध्युः—ध्यान किया;  
मीलित—बन्द किये; लोचनाः—अपनी आँखें।

किन्तु कुछ गोपियाँ अपने घरों से बाहर न निकल पाईं अतः वे अपनी आँखें बन्द किये शुद्ध



प्रेम में कृष्ण का ध्यान करते हुए घर पर ही ठहरी रहीं।

**तात्पर्य :** श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने पूरे दसवें स्कंध की भगवान् कृष्ण की लीलाओं का काव्यात्मक भाष्य विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है। इन विस्तृत विवरणों को सम्मिलित कर पाना हमेशा सम्भव नहीं किन्तु इस श्लोक पर उनका पूरा भाष्य प्रस्तुत कर रहे हैं। विद्वान वैष्णव समुदाय से हमारी यही संस्तुति है कि भगवान् का कोई योग्य भक्त दसवें स्कंध पर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के भाष्य को पृथक् पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करे तो भक्तों तथा अभक्तों द्वारा वह समान रूप से प्रशंसित होगी। आचार्य का इस श्लोक पर भाष्य निम्नवत् है :

इस प्रसंग में हम श्रील रूप गोस्वामी कृत उज्ज्वल नीलमणि में वर्णित विधि के अनुसार अपना विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे। गोपियों के दो वर्ग हैं— *नित्यसिद्ध* अर्थात् शाश्वत पूर्ण तथा *साधनसिद्ध* अर्थात् भक्तियोग के अभ्यास द्वारा पूर्ण बनी हुई। *साधनसिद्ध* की भी दो श्रेणियाँ हैं—विशिष्ट तथा अविशिष्ट। विशिष्ट श्रेणी के भी दो विभाग हैं— *श्रुतिचारी* अर्थात् साक्षात् वेदों से आने वाली तथा *ऋषिचारी* अर्थात् ऋषियों के उस वर्ग से आने वाली जिन्होंने भगवान् रामचन्द्र को दण्डकारण्य में देखा था।

*पद्म पुराण* में भी गोपियों का यही चतुर्विध वर्गीकरण पाया जाता है—

*गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा गोपकन्यकाः ।*

*देवकन्याश्च राजेन्द्र न मानुष्याः कथञ्चन ॥*

“ऐसा माना जाता है कि कुछ गोपियाँ साक्षात् वैदिक साहित्य हैं, कुछ पुनः जन्मी ऋषि हैं, कुछ ग्वालों की पुत्रियाँ हैं या फिर देवताओं की कन्याएँ हैं। किन्तु हे राजन् उनमें से कोई एक किसी भी प्रकार से सामान्य ग्वालिनें नहीं हैं।” यहाँ पर बताया गया है कि यद्यपि गोपियाँ मानवी गोपकन्याएँ प्रतीत होती थीं किन्तु वास्तव में वे थीं नहीं। इस तरह इस विवाद का कि वे मर्त्य थीं निराकरण हो जाता है।

यहाँ पर जिन ग्वाल-पुत्रियों को *गोपकन्याएँ* कहा गया है वे अवश्यमेव नित्यसिद्ध हैं क्योंकि उन्होंने कभी कोई *साधना* नहीं की। उनके द्वारा कात्यायनी देवी की पूजा का साधन यही बतलाता है कि वे मनुष्यों की तरह कार्य कर रही थीं और *भागवत* में इस पूजा का विवरण यह दिखाने के लिए आया है कि किस प्रकार उन्होंने गोपकन्याओं की भूमिका पूर्ण रूप से ले रखी थी।

गोपकन्या गोपियों का *नित्यसिद्ध* होना ब्रह्म-संहिता के इस कथन (५.३७) से स्थापित हो जाता है—*आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभिः* । इससे यह सिद्ध होता है कि वे भगवान् की आध्यात्मिक ह्लादिनी शक्ति हैं। इसी प्रकार से *गौतमीय* तंत्र में कहा गया है—*ह्लादिनी* या *महाशक्तिः* । उनकी पूर्णता की पुष्टि इससे भी होती है कि ये गोपियाँ अपने प्रेमी कृष्ण के साथ साथ नित्य हैं जिसका उल्लेख अठारह अक्षर वाले मंत्र, दस अक्षर वाले मंत्र तथा अन्य मंत्रों में हुआ है। इन मंत्रों की पूजा तथा इन्हें प्रस्तुत करने वाली श्रुतियाँ अनन्तकाल से विद्यमान हैं।

“*सम्भवस्त्वमरस्त्रियः* से प्रारम्भ होने वाले श्लोक में जिन देवकन्याओं का उल्लेख हुआ है उन्हें *उज्ज्वल नीलमणि* में नित्यसिद्ध गोपियों का अंश कहा गया है। श्रुतिचारी अर्थात् साक्षात् वेदों से आने वाली गोपियों को *साधनसिद्ध* समझने का कारण *बृहद्दामन पुराण* से उद्धरित उनके निम्नलिखित शब्द हैं—

*कन्दर्पकोटिलावण्ये त्वयि दृष्टे मनांसि नः ।*

*कामिनीभावमासाद्य स्मरक्षुब्धान्यसंशयः ॥*

*यथा त्वल्लोकवासिन्यः कामतत्त्वेन गोपिकाः ।*

*भजन्ति रमणं मत्वा चिकीर्षाजनिनस्तथा ॥*

‘चूँकि हमने तुम्हारे मुख को देखा है, जिसमें लाखों कामदेवों का सौन्दर्य पाया जाता है, अतः हमारे मन तुम्हारे लिए उसी तरह कामुक हो उठे हैं जिस तरह उन तरुणियों के; और हम अन्य सारे प्रलोभनों को भूल चुकी हैं। हमने उन गोपियों की तरह आपके लिए कार्य करने की इच्छा उत्पन्न कर ली है, जो आपके दिव्य लोक में रहती हैं और इस विचार से आपकी पूजा करती हैं और कामदेव जैसा स्वभाव प्रकट करती हैं कि आप उनके जारपति हैं।’

ऋषिचारी गोपियाँ भी *साधनसिद्ध* हैं जैसा कि *उज्ज्वल नीलमणि* में कहा गया है—*गोपालोपासकाः पूर्वम् अप्राप्ताभीष्टसिद्धयः* । पूर्वजन्म में वे दण्डकारण्य में निवास करने वाले महर्षियों के रूप में थीं। इसका साक्ष्य हमें *पद्म पुराण* के उत्तर खण्ड में मिलता है :

*दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहम् ।*

*ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः समुद्भूताश्च गोकुले ।*

*हरिं सम्प्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात् ॥*

इस श्लोक में कहा गया है कि भगवान् रामचन्द्र को देखकर दण्डकारण्य के ऋषियों की इच्छा भगवान् हरि (कृष्ण) का भोग करने के लिए हुई। दूसरे शब्दों में, भगवान् राम के सौन्दर्य से उन्हें भगवान् हरि या गोपाल की स्मृति हो आई जो उनकी पूजा के व्यक्तिगत आराध्य थे और वे उनके साथ आनन्द भोगना चाहते थे। किन्तु चिन्ता के कारण वे अपनी इच्छा पूरी नहीं कर पाये अतः कल्पवृक्ष तुल्य भगवान् राम ने उन पर बिना माँगे ही कृपा कर दी। इस तरह उनकी इच्छा पूरी हो गई जैसा कि *ते सर्वे* शब्दों से प्रकट है। वे अपने काममय आकर्षण के द्वारा भवसागर और जन्म-मृत्यु के चक्कर से मुक्त हो गये और साथ साथ माधुर्य रस में उन्हें हरि की संगति भी मिल गई।

भागवत के इस श्लोक से हम यह जान पाते हैं कि जिन गोपियों के बच्चे थे उन्हें ही बलपूर्वक घर में रोका गया था। यह तथ्य *भागवत* के आगे के श्लोकों से क्रमशः स्पष्ट हो जाता है—*मातरः पितरः पुत्राः* (१०.२१.२०) *यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग* (१०.२९.३२) तथा *पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान्* (१०.३१.१६)। श्रील कवि कर्णपूर गोस्वामी ने दसवें स्कन्ध की टीका में इस तथ्य का उल्लेख किया है। हम इस श्लोक से सम्बन्धित उनके सारे भावों को न दुहराकर उनके तात्पर्य का सारांश देंगे।

भगवान् श्रीरामचन्द्र के स्वरूप को देखकर वे ऋषि जो भगवान् गोपाल के पूजक थे तुरन्त रागानुगभक्ति के परिपक्व पद को प्राप्त हो गये। इस तरह वे स्वतः दृढ़ विश्वास, आकर्षण तथा आसक्ति की अवस्थाओं को प्राप्त हुए। किन्तु तो भी वे अपने को समस्त भौतिक कल्मष से पूरी तरह मुक्त नहीं कर पाये थे इसलिए योगमाया-देवी ने उनके लिए व्यवस्था की कि वे गोपियों के गर्भ से जन्म लेकर गोपकन्याएँ बनें। इन नवीन गोपियों में से कुछ ने नित्यसिद्ध गोपियों की संगति से कृष्ण के लिए युवावस्था में कदम रखते ही पूर्वराग प्रकट किया (ऐसा आकर्षण प्रिय से मिलने के पूर्व भी उत्पन्न हो जाता है)। जब इन नवीन गोपियों ने कृष्ण के दर्शन किये और शरीर से उनका सान्निध्य प्राप्त किया, तो उनके बचेखुचे कल्मष भी जलकर क्षार हो गये और उन्हें *प्रेम, स्नेह* आदि की उच्च अवस्थाएँ प्राप्त हो गईं।”

“यद्यपि वे अपने गोपपतियों के संग थीं किन्तु योगमाया की शक्ति से गोपियाँ उनके साथ यौन-सम्पर्क से निष्कलंक रहती रहीं। एक तरह से वे शुद्ध आध्यात्मिक शरीरों में स्थित थीं जिनका कृष्ण ने

भोग किया। रात्रि में उन्होंने कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनी, उनके पतियों ने उन्हें रोकना चाहा किन्तु योगमाया के कृपामय सहयोग से साधनसिद्ध गोपियाँ अन्य नित्यसिद्ध गोपियों के साथ अपने प्रियतम के पास जा सकीं।

“किन्तु अन्य गोपियाँ जिन्हें नित्यसिद्ध गोपियों तथा अन्य सिद्ध गोपियों की संगति का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका, प्रेम अवस्था प्राप्त नहीं कर पाई जिससे उनका कल्मष पूरी तरह जलकर क्षार नहीं हो पाया। उन्होंने अपने गोपपतियों के साथ संभोग करने के बाद बच्चों को जन्म दिया। किन्तु कुछ ही काल बाद इन गोपियों में भी पूर्वराग उत्पन्न हुआ क्योंकि वे कृष्ण के साथ शारीरिक संयोग की प्रगाढ़ लालसा से पूर्ण थीं जो उन्होंने सिद्ध गोपियों की संगति से प्राप्त की थी। सिद्ध गोपियों की कृपापात्र बनकर उन्होंने कृष्ण द्वारा भोग्य दिव्य शरीर धारण किये और जब योगमाया उन्हें अपने पतियों द्वारा रोक रखने के प्रयासों पर विजय दिलाने में असफल रही तो उन्होंने अपने को निकृष्टतम विपदा में पड़ा हुआ पाया। अपने पतियों, भाइयों, जनकों तथा परिवार के अन्य सदस्यों को अपना शत्रु मानकर वे मरणासन्न हो गईं। जिस तरह अन्य स्त्रियाँ मृत्यु के समय अपनी माताओं या अन्य सम्बन्धियों का स्मरण करती हैं उसी तरह इन गोपियों ने एकमात्र सखा कृष्ण को प्राणाधार के रूप में स्मरण किया जैसाकि अन्तर् शब्द से प्रारम्भ होने वाले *भागवत* के इस श्लोक में कहा गया है।

“यह भाव निहित है कि वे स्त्रियाँ घर के बाहर निकल नहीं पाई क्योंकि उन्हें उनके पतियों ने रोक लिया था और वे अपने हाथों में लाठी लिए उन्हीं के पास खड़े होकर उन्हें डाँट-फटकार रहे थे। यद्यपि ये गोपियाँ निरन्तर कृष्ण-प्रेम में लीन रहती थीं किन्तु इस विशेष अवसर पर उन्होंने कृष्ण का ध्यान किया और अपने अन्तर में रोदन किया, “हे हमारे जीवन के एकमात्र सखा! हे वृन्दावन जंगल की कलाओं के सिन्धु! आप हमें किसी अगले जीवन में अपनी सखियाँ बनायें क्योंकि इस बार हम आपके कमल सदृश मुख को अपनी आँखों से नहीं देख पा रहीं हैं। जो भी हो, हम आपको अपने मन से निहारेंगी।” सारी गोपियाँ इस तरह अपने आप में पश्चाताप करती हुई अपनी आँखें बन्द किये खड़ी रहीं और तल्लीनता से कृष्ण का ध्यान करने लगीं।”

दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापथुताशुभाः ।

ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥ १० ॥

तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि सङ्गताः ।

जहर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥ ११ ॥

### शब्दार्थ

दुःसह—असह्य; प्रेष्ठ—अपने प्रिय से; विरह—वियोग से; तीव्र—तीक्ष्ण; ताप—जलन से; धुत—दूर हो गये; अशुभाः—उनके हृदयों की सारी अशुभ बातें; ध्यान—ध्यान से; प्राप्त—प्राप्त किया हुआ; अच्युत—अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण के; आश्लेष—चुम्बन से उत्पन्न; निर्वृत्या—हर्ष से; क्षीण—अत्यन्त दुर्बल; मङ्गलाः—उनके शुभ कर्मफल; तम्—उस; एव—भले ही; परम-आत्मानम्—परमात्मा को; जार—उपपत्ति; बुद्ध्या—सोचते हुए; अपि—तो भी; सङ्गताः—प्रत्यक्ष संगति पाकर; जहुः—त्याग दिया; गुण-मयम्—प्रकृति के गुणों से निर्मित; देहम्—उनके शरीर को; सद्यः—तुरन्त; प्रक्षीण—पूरी तरह शिथिल कर दिया; बन्धनाः—कर्म के बन्धनों को।

जो गोपियाँ कृष्ण का दर्शन करने नहीं जा सकीं, उनके लिए अपने प्रियतम से असह्य विछोह तीव्र वेदना उत्पन्न करने लगा, जिसने उनके सारे अशुभ कर्मों को भस्म कर डाला। उनका ध्यान करने से गोपियों को उनके आलिंगन की अनुभूति हुई और तब उन्हें जो आनन्द अनुभव हुआ उसने उनकी भौतिक धर्मनिष्ठा को समाप्त कर दिया। यद्यपि भगवान् कृष्ण परमात्मा हैं किन्तु इन युवतियों ने उन्हें अपना प्रेमी ही समझा और उसी घनिष्ठ रस में उनका संसर्ग प्राप्त किया। इस तरह उनके कर्म-बन्धन नष्ट हो गये और उन्होंने अपने स्थूल भौतिक शरीरों को त्याग दिया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है : “यहाँ पर शुकदेव गोस्वामी विचित्र ढंग से बोलते हैं: वे गोपियों द्वारा प्राप्त किये गये आन्तरिक उद्देश्य को एक बाह्य विचार के रूप में प्रस्तुत करते हैं और इस तरह असली स्वभाव को बाहरी लोगों से गोपनीय बनाये रखते हैं किन्तु उसी के साथ ही वे गुह्य भक्तों को, जो कि आध्यात्मिक भक्ति के वैज्ञानिक परिणामों में दक्ष हैं असली उद्देश्य प्रकट कर देते हैं। इस तरह बाहरी लोगों से शुकदेव कहते हैं कि कृष्ण ने गोपियों को मोक्ष प्रदान किया किन्तु गुह्य श्रोताओं से शुकदेव बतलाते हैं कि जब गोपियों को अपने प्रिय से विछोह का अनुभव हुआ तो उनमें अपार दुख तथा अपार सुख दोनों ही उत्पन्न हुए और इस तरह धीरे-धीरे उन्हें वांछित उद्देश्य प्राप्त हो गया।

इस तरह इस श्लोक को निम्नवत् समझा जा सकता है : अपने प्रिय के असह्य वियोग के कारण गोपियों को भीषण पीड़ा हुई जिससे सारी अशुभ वस्तुएँ लड़खड़ाने लगीं। दूसरे शब्दों में, जब सामान्य लोग गोपियों द्वारा अपने प्रिय के वियोग में अपार पीड़ा होने के विषय में सुनते हैं, तो वे हजारों अशुभ

वस्तुओं को त्याग देते हैं—जैसे करोड़ों ब्रह्माण्डों के भीतर दहकती अग्नि जैसी भयावह वस्तुएँ या शिवजी द्वारा पिया हुआ गरल। विशेष रूप से जो गोपियों के विरह प्रेम के बारे में सुनते हैं, वे अपने भीषण मिथ्या अहंकार को त्याग देते हैं और अपने को पराजित मानते हुए दहल जाते हैं। जब गोपियों ने भगवान् अच्युत का ध्यान किया, तो वे प्रकट होकर उनके समक्ष आये और गोपियाँ उनके शरीर का आलिंगन करके अत्यन्त आनन्दित हुईं क्योंकि उनका शरीर गोपियों के प्रति दिव्य प्रेम से पूर्ण था। गोपियों ने भी इस प्रेम के अनुरूप अपने अपने शारीरिक लक्षण और पहचान के भाव प्रकट करते हुए परम प्रसन्नता का अनुभव किया। इस प्रसन्नता के आगे उनका समस्त भौतिक या आध्यात्मिक सौभाग्य तुच्छ प्रतीत हो रहा था।

बात यह है कि जब अन्य लोग यह देखते हैं कि जब कृष्ण गोपियों के समक्ष प्रकट हुए वे उनका आलिंगन करके कितनी सुखी हुईं तो ये लोग यह अनुभव करते हैं कि तथाकथित हजारों शुभ वस्तुएँ इसकी तुलना में नगण्य हैं—यहाँ तक कि करोड़ों ब्रह्माण्डों में प्राप्य इन्द्रिय सुख तथा ब्रह्मानन्द भी नगण्य लगता है। परमेश्वर से विछोह एवं उनसे मिलन के फलस्वरूप क्रमशः उत्पन्न गोपियों के कष्ट और हर्ष के विषय में सुनकर कोई भी व्यक्ति अपने समस्त विगत कर्मफलों से, चाहे वे पापपूर्ण हों या पवित्र हों, छूट सकता है। हाँ, वैष्णवजन ऐसा नहीं सोचते कि किसी के पापमय तथा पुण्य कर्मफल केवल उनका भोग करने से ही नष्ट हो सकते हैं क्योंकि न तो परमेश्वर से विछोह, न ही उनकी प्रत्यक्ष संगति ही *कर्म* की श्रेणी में आते हैं। कर्मफलों का इस तरह का निवारण तो *भजन* अवस्था में उन लोगों के साथ होता है, जो *अनर्थ निवृत्ति* पद को प्राप्त हो चुके हैं।

“इस तरह गोपियों ने परमात्मा या प्रेम के परम लक्ष्य कृष्ण को अपना जारपति मान लिया। यद्यपि ऐसा भाव सामान्य रीति से निन्दनीय है किन्तु गोपियाँ कृष्ण के प्रति रुक्मिणी तथा अन्य रानियों की अपेक्षा अधिक अनुरक्त थीं, जो उन्हें पूर्ण सम्मानपूर्वक अपना पति मानती थीं। भगवान् को अपना जारपति मानना असली पति मानने की तुलना में श्रेष्ठ है—यह इस बात से सिद्ध हो जाता है कि निर्बन्ध शुद्ध प्रेम गृहस्थ-प्रेम से बढ़कर है। श्री उद्धव के वचनों से इस भाव का समर्थन होता है— *या दुस्त्यजं स्वजनम् आर्यपथं च हित्वा*—व्रज की इन महिलाओं ने अपने परिवार तथा अपने उन्नत धर्म का भी परित्याग कर दिया जिनका परित्याग कर पाना दुष्कर होता है। ( *भागवत* १०.४७.६१ )।

“इस धरा पर अपनी लीलाओं में कृष्ण प्रायः नगण्य वस्तुओं को अत्युच्च बना देते हैं। जैसाकि भीष्म ने कहा है कि अर्जुन के सारथी के रूप में कृष्ण की लीला उन लीलाओं से भी अधिक महान् है जिनमें वे राजाओं के भी राजा की तरह कार्य करते थे—*विजयरथ कुटुम्ब आत्ततोत्रे। धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेस्क्षणीये*—मैं अर्जुन के सारथी का ध्यान करता हूँ जो अपने दाएँ हाथ में चाबुक और बाएँ हाथ में लगाम लिए हैं और जो अर्जुन के रथ की सभी प्रकार से रक्षा करने के लिए सतर्क थे। ( *भागवत* १.९.३९ ) इसी तरह हम देखते हैं कि सामान्य निकृष्ट माधुर्य रास सामान्य उच्चतर शान्त रस से श्रेष्ठ बन जाता है। इसी तरह जारपति से प्रेम-भाव वैध दम्पति के प्रेम-विनिमय से श्रेष्ठ बन जाता है। गुंजा की तुच्छ मालाएँ गेरू के लेप और मोरपंख सर्वोत्तम रत्नजटित आभूषणों से भी श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं।

“किन्तु यह आपत्ति की जा सकती है कि भगवान् के लिए इस प्रकार उन स्त्रियों से केलि करना उचित नहीं है जिनके शरीर का भोग अन्य पुरुषों द्वारा पहले से हो चुका हो। इस आक्षेप का उत्तर *जहुः* आदि शब्दों में मिल जाता है। यहाँ पर *देहम्* शब्द एकवचन में प्रयुक्त हुआ है, जबकि गोपियाँ अनेक हैं अतः यह एकत्व का सूचक है। कुछ अधिकारियों का कहना है कि योगमाया की शक्ति से गोपियों के शरीर इस तरह अन्तर्धान हो गये कि उन्हें कोई देख नहीं पाया किन्तु अन्य विद्वानों का कथन है कि इस प्रसंग में *देहम्* शब्द निकृष्ट शरीर का द्योतक है, जो प्रकृति के गुणों से बना हुआ है। *गुणमयम्* विशेषण की प्रधानता के कारण ऐसा समझा जाता है कि कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि सुनने के पूर्व गोपियों के दोहरे शरीर थे—भौतिक तथा आध्यात्मिक—किन्तु बाँसुरी सुनते ही उन्होंने अपने पतियों द्वारा भुक्त भौतिक शरीरों का परित्याग कर दिया। हम इसकी विवेचना निम्न प्रकार कर सकते हैं—

“जब भक्तगण किसी प्रामाणिक गुरु के आदेशानुसार भक्ति करना प्रारम्भ करते हैं, तो वे भगवान् का श्रवण करने, उनकी महिमा का गायन करने, उनका स्मरण करने, उन्हें नमस्कार करने, उनकी शरण में उपस्थित रहने आदि के द्वारा अपने कानों तथा अन्य इन्द्रियों को शुद्ध भक्ति में लगाते हैं। इस तरह भक्तगण भगवान् के दिव्य गुणों को अपनी इन्द्रियों का लक्ष्य बना लेते हैं, जैसाकि स्वयं भगवान् ने कहा है ( *भागवत* ११.२५.२६ )—*निर्गुणो मदपाश्रयः।* इस तरह भक्तों के शरीर प्रकृति के गुणों को लाँघ जाते हैं। फिर भी कभी कभी भक्त संसारी ध्वनियों को अपने इन्द्रिय विषय मान सकते हैं और यही भौतिक है। इस तरह भक्त के शरीर के दो पक्ष होते हैं—दिव्य तथा भौतिक।

“भक्ति के अपने स्तर के अनुसार ही किसी के शरीर के दिव्य पक्ष प्रधान बनते हैं और भौतिक पक्ष घटते हैं। इस रूपान्तर का वर्णन *भागवत* (११.२.४२) में निम्नलिखित श्लोक में मिलता है—

*भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिर-*

*न्यत्र चैष त्रिक एककालः ।*

*प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्यु-*

*स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥*

“जिसने भगवान् की शरण ले रखी है उसके लिए भक्ति, भगवान् का साक्षात् अनुभव तथा अन्य बातों से विरक्ति—ये तीनों एकसाथ घटित होते हैं। यह वैसे ही है जैसे कि भोजन करते हुए मनुष्य के हर कौर के साथ आनन्द, पोषण तथा क्षुधा से निवृत्ति एकसाथ और अधिकाधिक अनुभव होते हैं।” जब मनुष्य को ईश्वर का सर्वथा शुद्ध प्रेम प्राप्त हो जाता है, तो शरीर के भौतिक अंश अदृश्य हो जाते हैं और शरीर पूरी तरह आध्यात्मिक बन जाता है। तो भी नास्तिकों के मिथ्या मतों को विचलित न होने देने तथा भक्ति की गुह्यता की रक्षा करने के लिए भगवान् अपनी माया से स्थूल शरीर की मृत्यु करा देते हैं। इसका उदाहरण मौषल लीला के समय यादवों का विलोप है।

किन्तु कभी कभी कृष्ण भक्तियोग की श्रेष्ठता घोषित करने के लिए भक्त को सशरीर भगवद्धाम जाने देते हैं जैसाकि ध्रुव महाराज के साथ हुआ। इसके साक्ष्य में *भागवत* से ही (११.२५.३२) उद्धरण दिया जा सकता है—

*येनेमे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः ।*

*भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते ॥*

“जो जीव मन से प्रकट होने वाले प्रकृति के गुणों पर विजय पा लेता है, वह भक्तियोग के द्वारा अपने आपको मुझे (कृष्ण) समर्पित कर सकता है और इस तरह मेरे शुद्ध प्रेम को प्राप्त कर सकता है।” भगवान् यहाँ यह बताते हैं कि प्रकृति के गुणों से निर्मित होने वालों की पराजय तथा विनाश को भक्तियोग द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकता है।

अतएव भागवत के इस श्लोक से हमें यही समझना चाहिए कि जो गोपियाँ कृष्ण का दर्शन करने नहीं जा पाई उन्होंने अपने अशुभ भौतिक देहों को या तो छोड़ दिया या जला दिया और उनके शुभ



आध्यात्मिक शरीर ध्यान में कृष्ण का आलिंगन करने से अनुभव किये गये आनन्द के कारण विनष्ट होने की बजाय और भी प्रधान बनते गये। इस तरह उनका बन्धन पूरी तरह नष्ट हो गया। योगमाया की सहायता से वे अज्ञान से तथा अपने पतियों एवं सम्बन्धियों द्वारा रोके जाने से मुक्त हो गईं।

गोपियों के शरीर-त्याग को उनकी मृत्यु का परिणाम बताने की भूल हमें नहीं करनी चाहिए। स्वयं भगवान् ने कहा है ( भागवत १०.४७.३७),

*या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन् व्रज आस्थिताः ।*

*अलब्धरासाः कल्याण्यो मापुर्मद्वीर्यचिन्तया ॥*

“वे कुछ कल्याणी गोपियाँ उस रात्रि में इस वृन्दावन में मेरे साथ रासनृत्य में सम्मिलित नहीं हो पाईं फिर भी मेरी दिव्य लीलाओं का स्मरण करने से उन्हें मेरा सान्निध्य प्राप्त हो गया।” इस श्लोक में कल्याण्यः शब्द के प्रयोग द्वारा भगवान् कहना चाहते हैं कि यद्यपि गोपियाँ अपने पतियों के मना करने तथा मेरे वियोग की पीड़ा के कारण अपना शरीर त्याग देना चाहती थीं किन्तु इस परम शुभ रासोत्सव के शुभारम्भ में उनका मरना मुझे अच्छा न लगता अतएव अशुभ बन जाता। इसीलिए वे मरी नहीं।”

कृष्ण को देखने जाने से रोकी गई गोपियाँ शरीर से नहीं मरीं—इसका अन्य साक्ष्य श्रीशुकदेव के ही कथन से इसी स्कंध (१०.४७.३८) में प्राप्त होता है— *ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्सन्देशागतस्मृतीः*—तब गोपियों ने संतुष्ट होकर उद्धव की बातों का उत्तर दिया क्योंकि उसके सन्देश ने कृष्ण की स्मृति ताजी कर दी थी। यहाँ पर हमें पता चलता है कि उद्धव से बातें कर रही गोपियाँ वे थीं जो अपने पतियों के द्वारा रोके जाने के कारण रासनृत्य में सम्मिलित नहीं हो पाईं थीं। अतः निष्कर्ष यह निकला कि इन गोपियों ने बिना मरे अपने भौतिक शरीर त्याग दिये। विरह-ताप से झुलसकर उनके शरीर अपनी भौतिकता त्यागकर उसी तरह शुद्ध आध्यात्मिक बन गये जिस तरह ध्रुव महाराज जैसे महान् भक्तों के शरीर बन गये थे। गोपियों के ‘शरीर-त्याग’ का यही अर्थ है।

निम्नलिखित दृष्टान्त से विभिन्न गोपियों की अवस्थाओं का दृश्य प्रकट हो जाता है : आम के वृक्ष में सात-आठ पके फलों को देखकर हम यह पता लगा सकते हैं कि वृक्ष के सारे फल पके हुए हैं। तब हम उन्हें तोड़कर घर ला सकते हैं जहाँ कुछ समय के पश्चात् सूर्य की किरणों तथा अन्य साधनों से वे अधिक आकर्षक, सुगन्धित तथा स्वादिष्ट बन जाते हैं—जिन्हें हम राजा को उन्हें खाकर आनंद लेने

के लिए भेंट कर सकते हैं। जब राजा के भोजन का समय आता है, तो कोई समझदार नौकर उनमें से खाने योग्य फलों को चुनकर ले जाता है। देखने से ही नौकर यह जान लेता है कि कौनसा फल बीच तक पका है लेकिन ऊपर कच्चा है, अतः अभी भी राजा के खाने योग्य नहीं है। इन शेष फलों को पकाने की विशेष विधि से दो-तीन दिनों में पकाया जा सकता है और तब वे भी राजा के खाने योग्य बन सकते हैं।”

“इसी तरह मुनिचारी गोपियाँ जिन्होंने गोकुल में जन्म लिया था किन्तु उनमें से जिन्होंने अपने शरीरों की भौतिकता को पूरी तरह से त्याग दिया था और जिन्होंने जीवन के प्रारम्भ में ही पूर्णतया आध्यात्मिक शरीर प्राप्त कर लिये वे किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अस्पृश्य बनी रहीं। अतः जब वे कृष्ण से मिलने गईं तो योगमाया ने उन्हें नित्यसिद्ध तथा अन्य उच्च गोपियों के साथ जाने की अनुमति दे दी। अन्य मुनिचारी गोपियाँ तब भी अपने बाह्य भौतिक शरीर से सम्बन्ध बनाये रहीं किन्तु श्रीकृष्ण के विरहताप से क्षुब्ध होने पर इन्होंने भी अपने भौतिक शरीर त्याग दिये और पूर्णतया आध्यात्मिक शरीर धारण कर लिये जो अन्य पुरुषों के सम्पर्क के सभी प्रकार के मल से शुद्ध थे। रासनृत्य की रात में योगमाया ने इनमें से कुछ गोपियों को उन गोपियों के पीछे भेजा जो पहले ही जा चुकी थीं। जिन गोपियों में थोड़ा भी कलुष बचा देखा उन्हें योगमाया ने तब तक रोके रखा जब तक वे भी विरह के ताप से शुद्ध नहीं हो गईं और तब इन्हें किसी अन्य रात्रि में भेजा।”

“कृष्ण के साथ रासनृत्य तथा अन्य लीलाओं का आनन्द लूटने के बाद मुनिचारी गोपियाँ रात्रि बीतने पर अपने अपने घरों को लौट आईं। इसी तरह नित्यसिद्ध तथा अन्य उच्च गोपियों ने किया। किन्तु अब योगमाया ने इन मुनिचारी गोपियों को उनके पतियों के साथ भौतिक संयोग से रोका। दूसरे शब्दों में, ये गोपियाँ पति, सन्तान इत्यादि के प्रति किसी प्रकार की स्वार्थपूर्ण आसक्ति से रहित हो गईं। चूँकि ये गोपियाँ कृष्ण-प्रेम के सागर में पूर्णतया निमग्न थीं अतएव उनके स्तनों का दूध सूख गया जिससे वे अपने बच्चों को दूध नहीं पिला सकती थीं और अपने परिवार वालों को वे ऐसी प्रतीत होती थीं जैसे उनपर कोई भूत सवार हो। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि जो गोपियाँ पहले भौतिकता से ग्रस्त थीं उनका रासनृत्य में भाग लेना, अनुचित नहीं प्रतीत होता है।

“फिर भी कुछ विद्वानों की पुष्ट धारणा है कि जो गोपियाँ अपने घरों में रोक ली गई थीं उनके

बच्चे नहीं थे। उनके अनुसार जहाँ भी *अपत्य* शब्द का आगे के श्लोकों में प्रयोग हुआ है, वह सपत्नियों के बच्चों का, गोद लिये बच्चों या भतीजे-भतीजियों का सूचक है।”

श्रीपरीक्षितुवाच

कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने ।  
गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-परीक्षित उवाच—श्री परीक्षित ने कहा; कृष्णम्—कृष्ण को; विदुः—वे जानती थीं; परम्—एकमात्र; कान्तम्—अपने प्रेमी के रूप में; न—नहीं; तु—लेकिन; ब्रह्मतया—परम सत्य के रूप में; मुने—हे मुनि, शुकदेव; गुण—तीनों गुणों की; प्रवाह—प्रबल धारा का; उपरमः—रुक जाना; तासाम्—उनके लिए; गुण-धियाम्—इन गुणों के वशीभूत बुद्धि है जिनकी; कथम्—कैसे।

श्रीपरीक्षित महाराज ने कहा : “हे मुनिवर, गोपियाँ कृष्ण को केवल अपना प्रेमी मानती थीं, परम पूर्ण सत्य के रूप में नहीं मानती थीं। तो फिर ये युवतियाँ जिनके मन प्रकृति के गुणों की लहरों में बह रहे थे, किस तरह से अपने आपको भौतिक आसक्ति से छुड़ा पाई?”

तात्पर्य : राजा परीक्षित मुनियों तथा अन्यगण्यमान्य महापुरुषों की सभा में विराजमान थे और शुकदेव गोस्वामी के वचनों को सुन रहे थे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार जब शुकदेव गोस्वामी कृष्ण के प्रति गोपियों के माधुर्य प्रेम के विषय में बोल रहे थे, तो राजा वहाँ पर उपस्थित कतिपय भौतिकतावादी व्यक्तियों के मनोभावों को ताड़ गए और उन्होंने उनके मन को आन्दोलित करने वाले संशय का अनुमान लगाया। अतएव राजा शुकदेव के वचनों का तात्पर्य समझ रहे थे किन्तु उन्होंने अपने को इस तरह प्रस्तुत किया मानो उनकी अपनी शंकाएँ हों जिनसे वे अन्यो की शंका को दूर कर सकें। इसीलिए उन्होंने यह प्रश्न पूछा।

श्रीशुक उवाच

उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः ।  
द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; उक्तम्—कहा गया; पुरस्तात्—इसके पूर्व; एतत्—यह; ते—तुमसे; चैद्यः—चेदि नरेश शिशुपाल; सिद्धिम्—सिद्धि, पूर्णता; यथा—जिस तरह; गतः—प्राप्त हुआ; द्विषन्—द्वेष रखने के कारण; अपि—भी; हृषीकेशम्—भगवान् हृषीकेश को; किम् उत—तो फिर क्या कहा जा सकता है; अधोक्षज—भगवान् के, जो सामान्य इन्द्रियों की परिधि से बाहर रहते हैं; प्रियाः—प्रिय भक्तों का।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : यह विषय आपको पहले बताया जा चुका था। चूँकि कृष्ण से

घृणा करने वाला शिशुपाल तक सिद्धि प्राप्त कर सका तो फिर भगवान् के प्रिय भक्तों के विषय में कहना ही क्या है ?

**तात्पर्य :** यद्यपि बद्धजीवों का आध्यात्मिक स्वभाव माया से आच्छादित हो सकता है किन्तु भगवान् कृष्ण का दिव्य स्वभाव सर्वशक्तिमान है, जो किसी अन्य शक्ति द्वारा कभी भी आच्छादित नहीं होता। वस्तुतः अन्य सारी शक्तियाँ उन्हीं की शक्ति हैं और वे उनकी इच्छानुसार कार्य करती हैं। *ब्रह्म-संहिता* (५.४४) में कहा गया है— *सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका/ छायेव यस्य भुवनानि विभर्ति दुर्गा/ इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा*—भौतिक जगत्‌ों का सृजन, पालन और संहार करने वाली शक्तिशाली दुर्गा भगवान् की शक्ति हैं और वे उनकी इच्छानुसार उनके पीछे छाया की तरह चलती हैं। चूँकि भगवान् का आध्यात्मिक प्रभाव इस बात पर निर्भर नहीं करता कि कोई उन्हें समझता है या नहीं इसलिए कृष्ण के प्रति गोपियों का रागानुग प्रेम उनकी आध्यात्मिक सिद्धि की गारंटी प्रदान कर सका।

महान् आचार्य मध्वाचार्य ने *स्कन्द पुराण* से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है :

*कृष्णकामास्तदा गोप्यस्त्यक्ता देहं दिवं गताः ।*

*सम्यक् कृष्णं परब्रह्म ज्ञात्वा कालात् परं ययुः ॥*

“उस समय जिन गोपियों ने कृष्ण की इच्छा की उन्होंने अपने शरीर त्याग दिये और वे वैकुण्ठ चली गईं। चूँकि वे कृष्ण को परम पूर्ण सत्य के रूप में भली-भाँति जानती थीं अतएव वे काल के प्रभाव को भी लाँघ गईं।”

*पूर्वं च ज्ञानसंयुक्तास्तत्रापि प्रायशस्तथा ।*

*अतस्तासां परं ब्रह्म गतिरासीन्न कामतः ॥*

“अपने पूर्व जन्मों में अधिकांश गोपियों को दिव्य ज्ञान प्राप्त था। वे किसी कामवासना से नहीं अपितु इसी ज्ञान के कारण परब्रह्म को प्राप्त कर सकीं।”

*न तु ज्ञानमृते मोक्षो नान्यः पन्थेति हि श्रुतिः ।*

*कामयुक्ता तदा भक्तिज्ञानं चातो विमुक्तिगाः ॥*

“वेद घोषित करते हैं कि आध्यात्मिक ज्ञान के बिना मुक्ति का कोई उचित मार्ग नहीं है। चूँकि बाह्य रूप से कामासक्त इन गोपियों में भक्ति तथा ज्ञान था अतः उन्हें मुक्ति प्राप्त हुई।”

अतो मोक्षेऽपि तासां च कामो भक्त्यानुवर्तते ।

मुक्ति शब्दोदितो चैद्यप्रभृतौ द्वेषभागिनः ॥

“इस तरह उनकी मुक्ति में भी उनकी शुद्ध भक्ति के साथ-साथ कामवासना लगी रही। कुल मिलाकर, जिसे हम मुक्ति कहते हैं वह शिशुपाल जैसे ईर्ष्यालु व्यक्ति को भी प्राप्त हुई।”

भक्तिमार्गी पृथङ्मुक्तिमगाद् विष्णुप्रसादतः ।

कामास्त्वशुभकृच्चापि भक्त्या विष्णोः प्रसादकृत् ॥

“जो भक्तिमार्ग का पालन करता है उसे भगवान् विष्णु की कृपा से उपफल के रूप में मुक्ति प्राप्त होती है और ऐसे व्यक्ति की कामवासना जो सामान्यतया दुर्भाग्य को आमंत्रित करने वाली होती है, वह शुद्ध भक्ति में अभिव्यक्त होने पर विष्णु-कृपा को प्राप्त होती है।”

द्वेषिजीवयुतं चापि भक्तं विष्णुर्विमोचयेत् ।

अहोऽतिकरुणा विष्णोः शिशुपालस्य मोक्षणात् ॥

“भगवान् विष्णु ईर्ष्यालु जीवन वाले भक्त की भी रक्षा करते हैं। जरा भगवान् की असीम कृपा को देखिये न, किस तरह उन्होंने शिशुपाल को मुक्ति प्रदान की।”

शिशुपाल भगवान् कृष्ण का चचेरा भाई था। जब भगवान् सुमुखी युवा रुक्मिणी का हरण करके ले गये तो शिशुपाल का गर्व चूर हो गया क्योंकि वह स्वयं उससे विवाह करने की पूरी तरह तुला था। शिशुपाल भगवान् कृष्ण पर ईर्ष्या से जल रहा था अतः उसने राजसूय यज्ञ के समय मूर्खता से उनका अपमान किया। उस समय कृष्ण ने शिशुपाल का अविचल भाव से शिर काट लिया और उसे मुक्ति प्रदान की। सभी दर्शकों ने शिशुपाल के तेजपूर्ण आत्मा को उसके मृत शरीर से बाहर निकलकर भगवान् में लीन होते देखा। सातवें स्कन्ध में बताया गया है कि शिशुपाल वैकुण्ठ के द्वारपाल का अवतार था जिसे पृथ्वी पर असुर रूप में जन्म लेने का शाप मिला था। चूँकि शिशुपाल जैसे व्यक्ति को भी भगवान् द्वारा सारी स्थिति को ध्यान में रखते हुए मुक्ति मिल गई तो फिर उन गोपियों के विषय में क्या कहा जाये, जो कृष्ण को सर्वाधिक प्रेम करती थीं !

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।

अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १४ ॥

**शब्दार्थ**

नृणाम्—मनुष्यता के लिए; निःश्रेयस—सर्वोच्च लाभ; अर्थाय—के हेतु; व्यक्तिः—साकार रूप; भगवतः—भगवान्; नृप—हे राजन्; अव्ययस्य—अव्यय का; अप्रमेयस्य—मापविहीन; निर्गुणस्य—गुणों के स्पर्श से दूर; गुण-आत्मनः—गुणों के नियन्ता।

हे राजन्, भगवान् अव्यय तथा अप्रमेय हैं और भौतिक गुणों से अछूते हैं क्योंकि वे इन गुणों के नियन्ता हैं। इस जगत में साकार रूप में उनका आविर्भाव मानवता को सर्वोच्च लाभ दिलाने के निमित्त होता है।

**तात्पर्य** : चूँकि भगवान् कृष्ण मानवमात्र का कल्याण करने के लिए अवतरित होते हैं, तो भला वे उन अबोध तरुणियों की उपेक्षा क्यों करने लगे जो अन्य किसी की अपेक्षा उनसे अधिक प्रेम करती थीं? यद्यपि भगवान् अपने आपको अपने शुद्ध भक्तों को समर्पित कर देते हैं, तो भी वे अव्यय हैं, निःशेष हैं क्योंकि वे *अप्रमेय* अर्थात् नापे-जोखे नहीं जा सकते। वे *निर्गुण* अर्थात् भौतिक गुणों से रहित भी हैं अतः जो उनके घनिष्ठ सान्निध्य में रहते हैं, वे भी उसी आध्यात्मिक पद पर हैं। वे *गुणात्मा* हैं अर्थात् वे प्रकृति के गुणों के नियन्ता हैं इसीलिए वे इन गुणों से मुक्त रहते हैं। दूसरे शब्दों में, क्योंकि प्रकृति के गुण उनकी शक्ति हैं अतएव वे उनपर अपना प्रभाव नहीं डाल पाते।

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।

नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥ १५ ॥

**शब्दार्थ**

कामम्—कामवासना; क्रोधम्—क्रोध; भयम्—भय; स्नेहम्—स्नेह; ऐक्यम्—एकता; सौहृदम्—मित्रता; एव च—भी; नित्यम्—सदैव; हरौ—भगवान् हरि के प्रति; विदधतः—प्रकट करते हुए; यान्ति—प्राप्त करते हैं; तत्-मयताम्—तल्लीनता; हि—निस्सन्देह; ते—ऐसे व्यक्ति।

जो व्यक्ति अपने काम, क्रोध, भय, रक्षात्मक स्नेह, निर्विशेष एकत्व का भाव या मित्रता को सदैव भगवान् हरि में लगाते हैं, वे निश्चित रूप से उनके भावों में तल्लीन हो जाते हैं।

**तात्पर्य** : भगवान् कृष्ण शुद्ध आध्यात्मिक पुरुष हैं और जो लोग जिस-तिस भाँति उनसे अनुरक्त हो जाते हैं और उनमें लीन रहते हैं, वे आध्यात्मिक पद तक उठ जाते हैं। भगवान् के सान्निध्य की यही परम प्रकृति है।

इस श्लोक में शुकदेव गोस्वामी गोपियों के विषय में पूछे गये प्रश्न का उत्तर राजा परीक्षित को देते हैं। शुकदेव गोस्वामी भगवान् की अत्यन्त घनिष्ठ लीला, रासनृत्य का वर्णन शुरू कर चुके हैं और राजा

परीक्षित उन श्रोताओं के संशयों को दूर करने में सहायक बन रहे हैं, जो इस विस्मयपूर्ण कथा को सुन रहे हैं या भविष्य में सुनेंगे। श्रील मध्वाचार्य ने स्कन्द पुराण से उस कथन को उद्धृत किया है, जो गोपियों को भौतिक माया से परे मुक्तात्माएँ घोषित करने वाला है—

*भक्ता हि नित्यकामित्वं न तु मुक्तिं विना भवेत् ।*

*अतः कामितया वापि मुक्तिर्भक्तिमतां हरौ ॥*

“जो व्यक्ति पहले से ही मुक्त नहीं है, उसमें शुद्ध भक्ति में व्यक्त होने वाला कृष्ण के प्रति नित्य माधुर्य आकर्षण उत्पन्न नहीं हो सकता। अतः जो लोग माधुर्य आकर्षण में भी भगवान् हरि की भक्ति करते हैं, वे पहले ही मुक्ति पा लेते हैं।”

इसके बाद श्रील मध्वाचार्य पद्म पुराण से उद्धरण देते हैं जिससे यह स्पष्ट हो सके कि मनुष्य केवल कृष्ण के प्रति कामवासना रखने से ही मुक्ति नहीं पा सकता अपितु उसमें शुद्ध भक्तिपूर्ण माधुर्य आकर्षण होना चाहिए।

*स्नेहभक्ताः सदा देवाः कामित्वेनाप्सरस्त्रियः ।*

*काश्चित् काश्चिन्न कामेन भक्त्या केवलयैव तु ॥*

“देवतागण सदैव भगवान् से स्नेहभक्ति करते हैं और अप्सराएँ कहलाने वाली स्वर्ग की युवतियाँ सदैव उनके प्रति कामवासनाएँ रखती हैं यद्यपि उनमें से कुछ में भौतिक कामवासना से रहित शुद्ध भक्ति भी पाई जाती है। केवल ऐसी ही कामवासना-रहित अप्सराओं को मुक्ति मिलती है क्योंकि प्रामाणिक भक्ति के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।”

अतः जब तक भक्ति भौतिक कामवासना से मुक्त नहीं हो लेती वह योग्यम् या उपयुक्त नहीं मानी जाती। हमें चाहिए कि माधुर्य भाव में कृष्ण के साथ गोपियों के निजी सान्निध्य को सस्ता व्यापार न समझें। भगवान् के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध की गम्भीरता प्रदर्शित करने के लिए श्रील मध्वाचार्य ने वराह पुराण के निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये हैं—

*पतित्वेन श्रियोपास्यो ब्रह्मणा मे पितेति च ।*

*पितामहतयान्येषां त्रिदशानां जनार्दनः ॥*

“लक्ष्मीजी भगवान् जनार्दन को अपने पति रूप में पूजती हैं, ब्रह्माजी उन्हें अपने पिता के रूप में

पूजते हैं और अन्य देवता उन्हें अपने पितामह के रूप में पूजते हैं।”

प्रपितामहो मे भगवानिति सर्वजनस्य तु ।

गुरुः श्रीब्रह्मणो विष्णुः सुराणां च गुरोर्गुरुः ॥

“अतः सामान्य लोगों को चाहिए कि भगवान् को वे अपना प्रपितामह मानें। भगवान् विष्णु ब्रह्मा के आध्यात्मिक गुरु हैं अतः वे देवताओं के गुरु के भी गुरु हैं।”

गुरुर्ब्रह्मास्य जगतो दैवं विष्णुः सनातनः ।

इत्येवोपासनं कार्यं नान्यथा तु कथञ्चन ॥

“ब्रह्मा इस ब्रह्माण्ड के आध्यात्मिक गुरु हैं और विष्णु इसके शाश्वत पूज्य अर्चाविग्रह हैं। मनुष्य को चाहिये कि इसी भाव से भगवान् की पूजा करे, अन्य किसी भाव से नहीं।”

उपर्युक्त आदेश सर्वजन अर्थात् सबों पर लागू होते हैं। अतः मनुष्य को चाहिए कि इन आदेशों का तब तक पालन करता रहे जब तक परमेश्वर के सान्निध्य का उच्च पद प्राप्त न हो ले। इस विषय में पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं कि वृन्दावन की गोपिकाएँ अति उच्च मुक्तात्माएँ थीं अतएव कृष्ण के साथ उनकी लीलाएँ शुद्ध आध्यात्मिक व्यापार हैं। इस बात को मन में रखकर ही हम इस अध्याय को ठीक से समझ सकते हैं।

न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ।

योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद्विमुच्यते ॥ १६ ॥

#### शब्दार्थ

न च—न तो; एवम्—इस प्रकार का; विस्मयः—आश्चर्य; कार्यः—किया जाना चाहिए; भवता—आपके द्वारा; भगवति—भगवान्; अजे—अजन्मा; योग-ईश्वर—योग के स्वामियों के; ईश्वरे—परम स्वामी; कृष्णे—कृष्ण के विषय में; यतः—जिनसे; एतत्—यह (संसार); विमुच्यते—मुक्ति प्राप्त करता है।

आपको योगेश्वरों के अजन्मा, ईश्वर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के विषय में इस तरह चकित नहीं होना चाहिए। अन्ततः भगवान् ही इस जगत का उद्धार करने वाले हैं।

तात्पर्य : परीक्षित महाराज को इतना चकित नहीं होना चाहिए था कि भगवान् कृष्ण के तथाकथित प्रेमालाप समस्त ब्रह्माण्ड को मुक्त कराने के निमित्त हैं। आखिर, यही तो भगवान् का उद्देश्य है कि आनन्द तथा ज्ञानमय जीवन के लिए समस्त बद्धात्माओं को अपने धाम वापस बुलायें। गोपियों के प्रति कृष्ण के माधुर्य व्यापार उक्त योजना के साथ बहुत ही अच्छी तरह से मेल खाते हैं क्योंकि



भौतिक चेतना में वास्तविक रूप में आसक्त हम सभी उनके विषय में सुनकर शुद्ध तथा मुक्त हो सकते हैं।

श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध (१.५.३३) में नारदमुनि कहते हैं—

आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत।

तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ॥

“हे पवित्र आत्मा! जिस वस्तु से कोई रोग उत्पन्न होता है, क्या उसीको औषधि के रूप में लगाने से वह रोग ठीक नहीं हो जाता?” अतः कृष्ण के प्रेम-व्यापार शुद्ध आध्यात्मिक कर्म होने के कारण उन लोगों के भौतिक कामवासना के रोग को दूर कर देंगे जो उनका श्रवण करते हैं।

ता दृष्टान्तिकमायाता भगवान्ब्रजयोषितः ।

अवदद्ददातां श्रेष्ठो वाचः पेशैर्विमोहयन् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

ताः—उनको; दृष्टा—देखकर; अन्तिकम्—निकट; आयाताः—आया हुआ; भगवान्—भगवान् ने; ब्रज-योषितः—ब्रज की बालाएँ; अवदत्—कहा; वदताम्—वक्ताओं में; श्रेष्ठः—श्रेष्ठ; वाचः—वाणी के; पेशैः—अलंकरणों से युक्त; विमोहयन्—मोहित करने वाली।

यह देखकर कि ब्रज-बालाएँ आ चुकी हैं, वक्ताओं में श्रेष्ठ भगवान् कृष्ण ने उनके मन को मोहित करने वाले आकर्षक शब्दों से उनका स्वागत किया।

तात्पर्य : कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम की आध्यात्मिक प्रकृति की स्थापना करने के बाद शुकदेव गोस्वामी अपनी कथा को आगे बढ़ाते हैं।

श्रीभगवानुवाच

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ।

ब्रजस्यानामयं कच्चिद्भूतागमनकारणम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; सु-आगतम्—स्वागत है; वः—तुम लोगों का; महा-भागाः—अरे भाग्यशालिनियो; प्रियम्—अच्छा लगने वाला; किम्—क्या; करवाणि—कर सकता हूँ; वः—तुम लोगों के लिए; ब्रजस्य—ब्रज की; अनामयम्—कुशल-मंगल; कच्चिद्—क्या; ब्रूत—कहिये; आगमन—अपने आने का; कारणम्—कारण।

भगवान् कृष्ण ने कहा : हे अति भाग्यवंती नारीगण, तुम्हारा स्वागत है। मैं तुम लोगों की प्रसन्नता के लिए क्या कर सकता हूँ? ब्रज में सब कुशल-मंगल तो है? तुम लोग अपने यहाँ आने का कारण मुझे बतलाओ।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण भलीभाँति जानते थे कि गोपियाँ क्यों आई हैं। वस्तुतः उन्होंने ही इन्हें अपनी बाँसुरी की रोमांचक ध्वनि से बुलाया था। अतः कृष्ण गोपियों से यह पूछकर उन्हें छेड़ रहे थे कि “तुम लोग इतनी तेजी से यहाँ क्यों आई हो? क्या नगर में कुछ गड़बड़ है? तुम लोग आखिर क्यों आई हो? तुम क्या चाहती हो?”

गोपियाँ कृष्ण की युवती प्रेमिकाएँ थीं अतएव ये प्रश्न उन्हें निश्चित रूप से भ्रमित करने वाले थे क्योंकि कृष्ण के साथ माधुर्य प्रेम का आनन्द लूटने के सरल उद्देश्य से उन्होंने ऐसा किया था।

रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता ।

प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥ १९ ॥

#### शब्दार्थ

रजनी—रात; एषा—यह; घोर-रूपा—देखने में भयानक; घोर-सत्त्व—भयानक प्राणियों से; निषेविता—बसी हुई; प्रतियात—लौट जाओ; व्रजम्—व्रज ग्राम को; न—नहीं; इह—यहाँ; स्थेयम्—रुकना चाहिए; स्त्रीभिः—स्त्रियों के लिए; सु-मध्यमाः—क्षीण कटि वाली।

यह रात अत्यन्त भयावनी है और भयावने प्राणी इधर उधर फिर कर रहे हैं। हे पतली कमर वाली स्त्रियो, व्रज लौट जाओ। स्त्रियों के लिए यह उपयुक्त स्थान नहीं है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की बहुत ही मनोहारी टीका लिखी है—

[गोपियों ने सोचा] हाय हाय! हमारे पारिवारिक उत्तरदायित्वों, हमारी शालीनता तथा हमारी लज्जा को छिन्न-भिन्न करने के बाद तथा नित्यप्रति हमारा भोग करते रहने पर और अब हमें अपनी बाँसुरी से यहाँ तक खींच करके वह हमसे पूछ रहा है कि हम क्यों आई हैं?”

जब गोपियाँ एक-दूसरे को तिरछी नजर से देख रही थीं तो भगवान् ने कहा, “यदि तुम यह कहना चाहो कि भगवान् की पूजा करने के लिए रात में खिलने वाले पुष्प लेने आयी हो और अपनी तिरछी नजरों से तुम उन फूलों को ही देख रही हो तो मैं तुम्हारे बहानों को नहीं मान सकता क्योंकि देश, काल या व्यक्ति उसके उपयुक्त नहीं हैं।

“रजनी से प्रारम्भ होने वाले श्लोक में भगवान् के कहने का आशय यही है। हो सकता है कि उन्होंने कहा हो, “यद्यपि पर्याप्त चाँदनी है किन्तु रात का यह समय अत्यन्त भयावना है क्योंकि अनेक साँप, बिच्छू तथा भयानक प्राणी, जो इतने छोटे हैं कि तुम देख नहीं सकती, इन लताओं, जड़ों तथा टहनियों के नीचे छिपे हुए हैं। अतः फूल चुनने के लिए यह समय उपयुक्त नहीं है। केवल समय ही

नहीं, यह स्थान भी फूल चुनने के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि रात में यहाँ बाघ जैसे भयानक पशु घूमते रहते हैं। अतः तुम लोगों को ब्रज वापस लौट जाना चाहिए।”

“किन्तु,” गोपियाँ आपत्ति कर सकती हैं कि, “जरा हमें कुछ क्षणों के लिए विश्राम तो करने दो, तब हम चली जायेंगी।”

“तब भगवान् उत्तर दे सकते हैं, “स्त्रियों को ऐसे स्थान में नहीं रुकना चाहिए।” दूसरे शब्दों में, “काल तथा स्थान को देखते हुए तुम जैसी स्त्रियों को यहाँ एक क्षण भी रुकना ठीक नहीं है।”

“यही नहीं, सु-मध्यमा: (हे क्षीण-कटि वाली स्त्रियो) शब्द से भगवान् का मन्तव्य था, “तुम सुन्दर युवतियाँ हो और मैं सुन्दर युवक हूँ। चूँकि तुम सभी अत्यन्त सती-साध्वी हो और मैं ब्रह्मचारी हूँ, जैसाकि श्रुति के शब्दों कृष्णो ब्रह्मचारी से पुष्टि होती है ( गोपाल तापनी उपनिषद् ) अतएव हम लोगों का एक ही स्थान पर होना अनुचित नहीं है। फिर भी मन पर विश्वास नहीं किया जा सकता—चाहे तुम्हारे हों या मेरा मन हो।”

“भगवान् ने जिस आन्तरिक उत्सुकता का संकेत किया है, वह स्पष्ट हो जाती है यदि हम उनके शब्दों को ध्यानपूर्वक पढ़ें “यदि तुम लज्जा के कारण अपने आने का कारण नहीं बतला सकती तो मत बतलाओ। लेकिन मैं पहले से जानता हूँ अतः मैं जैसा कहूँ, उसे सुनो।” इस तरह भगवान् रजनी से प्रारम्भ होने वाले शब्द कहते हैं।”

संस्कृत शब्दों का अन्य प्रकार से अन्वय करने पर इस श्लोक का दूसरा अर्थ निकलता है, जिस पर कृष्ण का अगला कथन आधारित है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार अन्वय इस प्रकार होगा: रजनी एषा अघोररूपा अघोरसत्त्वनिषेविता/ प्रतियात ब्रजम् न इह स्थेयं स्त्रीभिःसुमध्यमाः। श्रील विश्वनाथ की टीका के माध्यम से कृष्ण इसका अर्थ इस प्रकार बतलाते हैं—

“सर्वव्याप्त चाँदनी ने इस रात को तनिक भी भयानक नहीं रहने दिया इसलिए यह जंगल हानिरहित प्राणियों, यथा हिरनों ( अघोरसत्त्वै ) से बसा हुआ है या फिर बाघ जैसे पशुओं से जो वृन्दावन के अहिंसक वातावरण के कारण हानिरहित हो चुके हैं। अतः तुम्हें इस रात से भयभीत नहीं होना चाहिए।” या फिर कृष्ण का आशय यह हो सकता था, “तुम लोगों को अपने पतियों तथा परिवार वालों से भयभीत नहीं होना चाहिए क्योंकि रात में भयानक पशुओं के होने से वे इस स्थान

तक नहीं आ सकेंगे। अतः तुम लोग ब्रज वापस न जाओ ( न प्रतियाय ) अपितु मेरे संग यहाँ रुको ( इह स्थेयम् )।”

“गोपियाँ कृष्ण से पूछ सकती हैं, “तो फिर तुम कैसे रुके हुए हो ?”

“भगवान् उत्तर देते हैं, “स्त्रियों के साथ।”

“तो क्या तुम किसी भी स्त्री को अपने साथ रखकर संतुष्ट हो ?”

“भगवान् इसका उत्तर *सुमध्यमा* शब्द से देते हैं जिसका अर्थ है, “केवल ऐसी स्त्रियाँ जो तरुणी तथा सुन्दर हैं, जिनकी कटि पतली हैं—अर्थात् जैसी तुम हो, मेरे साथ रुक सकती हैं, अन्य नहीं।” इस तरह हम देखते हैं कि कृष्ण के वचन भावपूर्ण होने के साथ ही उपेक्षापूर्ण भावों से युक्त हैं।”

कृष्ण के वचन निश्चित रूप से विचारोत्तेजक हैं क्योंकि संस्कृत व्याकरण के अनुसार उन्हें दो विपरीत प्रकारों में से किसी एक से समझा जा सकता है। ऊपर अनूदित अर्थ द्वारा कृष्ण गोपियों को यह कहकर तंग करते हैं कि रात भयानक तथा अशुभ है, अतः उन्हें वापस चले जाना चाहिए। किन्तु उसी के साथ वे सर्वथा विपरीत कथन भी करते हैं कि भगवान् के पास गोपियों को आने से तनिक भी डरना नहीं चाहिए, रात अत्यन्त शुभ है और तरुणियों को किसी भी दशा में लौटना नहीं चाहिए। इस तरह भगवान् कृष्ण अपने वचनों से गोपियों को तंग करने के साथ साथ मोहते भी हैं।

मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ।

विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृद्वं बन्धुसाध्वसम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

मातरः—माता; पितरः—पिता; पुत्राः—पुत्र; भ्रातरः—भाई; पतयः—पति; च—तथा; वः—तुम्हारे; विचिन्वन्ति—खोज रहे हैं; हि—निश्चय ही; अपश्यन्तः—न देखकर; मा कृद्वम्—मत उत्पन्न करो; बन्धु—अपने परिवार वालों के लिए; साध्वसम्—चिन्ता।

तुम्हारी माताएँ, पिता, पुत्र, भाई तथा पति तुम्हें घर पर न पाकर निश्चित रूप से तुम्हें ढूँढ़ रहे होंगे। अपने परिवार वालों के लिए चिन्ता मत उत्पन्न करो।

दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम् ।

यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥ २१ ॥

तद्यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन्सतीः ।

क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान्प्राययत दुह्यत ॥ २२ ॥

## शब्दार्थ

दृष्टम्—देख लिया; वनम्—जंगल; कुसुमितम्—पुष्पित; राका-ईश—पूर्णमासी के अधिष्ठाता देव, चन्द्रमा के; कर—हाथ से; रञ्जितम्—रंगा गया; यमुना—यमुना नदी से निकलते हुए; अनिल—वायु से; लीला—खेल-खेल में; एजत्—हिलते-डुलते; तरु—वृक्षों की; पल्लव—पत्तियों से; शोभितम्—शोभायमान; तत्—अतः; यात—वापस चली जाओ; मा चिरम्—देर लगाये बिना; गोष्ठम्—गाँव को; शुश्रूषध्वम्—जाकर सेवा करो; पतीन्—अपने पतियों की; सतीः—हे सतियो; क्रन्दन्ति—रो रहे हैं; वत्साः—बछड़े; बालाः—बच्चे; च—तथा; तान्—उनको; पाययत—अपना दूध पिलाओ; दुह्यत—गाय का दूध पिलाओ।

अब तुम लोगों ने फूलों से भरे तथा पूर्ण चन्द्रमा की चाँदनी से सुशोभित इस वृन्दावन जंगल को देख लिया। तुम लोगों ने यमुना से आने वाली मन्द मन्द वायु से हिलते पत्तों वाले वृक्षों का सौन्दर्य देख लिया। अतः अब अपने गाँव वापस चली जाओ। देर मत करो। हे सती स्त्रियो, जाकर अपने पतियों की सेवा करो और क्रन्दन करते बच्चों तथा बछड़ों को दूध दो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने श्लोक २२ की व्याख्या इस प्रकार की है—

भगवान् कृष्ण कहते हैं, “अब देर तक मत प्रतीक्षा करो अपितु तुरन्त चली जाओ।” सतीः शब्द का अर्थ है कि गोपियाँ पतिव्रता हैं। इसीलिए कृष्ण इंगित करते हैं कि गोपियों को जाकर अपने पतियों की सेवा करनी चाहिए जिससे वे अपने धार्मिक कृत्य पूरे कर सकें। गोपियों को भी पूज्य मानना चाहिए क्योंकि वे सती हैं। कृष्ण यह सब उन गोपियों से कह रहे हैं, जो विवाहिता हैं। अब वे अविवाहिताओं से कहते हैं, “बछड़े रँभा रहे हैं अतः जाकर देखो कि उन्हें दूध मिल जाय।” मुनिचारी गोपियों से कहते हैं, “तुम लोगों के बच्चे रो रहे हैं अतः जाकर उन्हें दूध पिलाओ।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इन दोनों श्लोकों का गूढार्थ भी इस प्रकार दिया है, “श्लोक २१ में कृष्ण ने कहा होगा, “यह वृन्दावन सर्वोत्कृष्ट स्थान है और आज पूर्णिमा की रात है। यही नहीं, हमारे चारों ओर यमुना नदी है और शीतल मन्द तथा सुगन्ध हवा बह रही है। ये सब दिव्य ऐश्वर्य हैं जिनसे प्रेमालाप मुखरित होता है और चूँकि सर्वोपरि आनन्द ऐश्वर्य प्रेम रूप में यहाँ पहले से हूँ तो आओ देखें कि तुम लोग रसास्वादन में कितनी पटु हो।”

२२ वें श्लोक में उनका मन्तव्य है, “अतः दीर्घकाल तक, इस पूरी रात-भर तुम यहाँ से मत जाओ अपितु यहीं रहो और मेरे साथ भोग-विलास करो। अपने पतियों एवं अपनी सीधी-सादी सासुओं आदि की सेवा के लिए मत जाओ। तुम लोगों के लिए ऐसा सौन्दर्य और यौवन गँवाना उपयुक्त नहीं होगा क्योंकि ये तो स्रष्टा के उपहार हैं। न ही तुम लोगों को अब गाय दुहना है, न ही बछड़ों तथा बच्चों को दूध पिलाना है। मेरे लिए आनन्ददायक आकर्षण से ओतप्रोत तुम सबों को इन

कार्यों से क्या प्रयोजन?’

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यह भी बतलाते हैं कि गोपियाँ यह तय नहीं कर सकीं कि कृष्ण कर क्या रहे हैं—क्या वे ठठोली कर रहे हैं, या उन्हें रुकने का आमंत्रण दे रहे हैं या फिर उन्हें घर लौट जाने का आदेश दे रहे हैं। अतः ज्योंही श्रीकृष्ण जंगल की शोभा का वर्णन करने लगे तो गोपियों को चिन्ता हुई और वे मोहग्रस्त होकर वृक्षों की ओर ऊपर देखने लगीं और जब वे यमुना का वर्णन करने लगे तो वे अपने आसपास नदी को देखने लगीं। उनकी नितान्त शुद्धता तथा सरलता के साथ ही माधुर्य रस में कृष्ण के प्रति परम भक्ति के कारण अति सुन्दर लीलाओं को जन्म मिला जो इस ब्रह्माण्ड में कभी नहीं हुई थीं।

अथ वा मदभिस्नेहाद्भवत्यो यन्त्रिताशयाः ।

आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः ॥ २३ ॥

#### शब्दार्थ

अथ वा—या कि; मत्-अभिस्नेहात्—मेरे लिए प्रेम के कारण; भवत्यः—तुम्हारे; यन्त्रित—अधीन हुआ; अशयाः—हृदय; आगताः—आई हुई; हि—निस्सन्देह; उपपन्नम्—उपयुक्त; वः—तुम लोगों के लिए; प्रीयन्ते—स्नेह करते हैं; मयि—मुझसे; जन्तवः—समस्त जीव।

अथवा तुम लोग कदाचित् मेरे प्रति अगाध प्रेम के कारण यहाँ आई हो क्योंकि इस प्रेम ने तुम्हारे हृदयों को जीत लिया है। यह सचमुच ही सराहनीय है क्योंकि सारे जीव मुझसे सहज भाव से स्नेह करते हैं।

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ।

तद्वन्धूनां च कल्याणः प्रजानां चानुपोषणम् ॥ २४ ॥

#### शब्दार्थ

भर्तुः—पति की; शुश्रूषणम्—निष्ठापूर्ण सेवा; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के लिए; परः—परम; धर्मः—कर्तव्य; हि—निस्सन्देह; अमायया—बिना द्वैत के; तत्-बन्धूनाम्—अपने पतियों के सम्बन्धियों के प्रति; च—तथा; कल्याणः—शुभ कृत्य; प्रजानाम्—सन्तानों की; च—तथा; अनुपोषणम्—देखरेख, पालनपोषण।

स्त्री का परम धर्म है कि वह निष्ठापूर्वक अपने पति की सेवा करे, अपने पति के परिवार के प्रति अच्छा व्यवहार करे तथा अपने बच्चों की ठीक देखरेख करे।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी यहाँ पर विशेष रूप से इंगित करते हैं कि गोपियों के असली शाश्वत पति तो श्रीकृष्ण हैं, घर में रहने वाले तथाकथित पति नहीं जो झूठे ही गोपियों को अपनी सम्पत्ति

मानते थे। इस प्रकार अमायया शब्द “बिना माया के” यह प्रकट करता है कि गोपियों का परम धर्म तो अपने असली प्रेमी श्रीकृष्ण की सेवा करना है।

दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ।

पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥ २५ ॥

#### शब्दार्थ

दुःशीलः— भ्रष्ट चरित्र वाला; दुर्भगः—अभागा; वृद्धः—बूढ़ा; जडः—मन्द; रोगी—बीमार; अधनः—गरीब; अपि वा—तो भी; पतिः—पति; स्त्रीभिः—स्त्रियों द्वारा; न हातव्यः—परित्याग नहीं करना चाहिए; लोक—अगले जीवन में उत्तम स्थान; इप्सुभिः—चाहने वाली; अपातकी—( यदि ) पतित न हो।

जो स्त्रियाँ अगले जीवन में उत्तम लोक प्राप्त करना चाहती हैं उन्हें चाहिए कि उस पति का कभी परित्याग न करें जो अपने धार्मिक स्तर से नीचे न गिरा हो चाहे वह दुश्चरित्र, अभागा, वृद्ध, अज्ञानी, बीमार या निर्धन क्यों न हो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने स्मृति शास्त्र से इससे मिलता-जुलता कथन उद्धृत किया है—पतिं त्वपतितं भजेत्—जो पतित नहीं है ऐसे स्वामी (पति) की सेवा करनी चाहिए। कभी कभी यह बेहूदा तर्क दिया जाता है कि यदि पति आध्यात्मिक सिद्धान्तों से नीचे गिर जाता है, तो भी उसकी पत्नी को उसका अनुगमन करना चाहिए क्योंकि वह उसका “गुरु” होता है। चूँकि कृष्णभावनामृत अन्य किसी धार्मिक सिद्धान्त की अधीनता स्वीकार नहीं कर सकता अतः जो गुरु अपने अनुयायी को भौतिकतावादी पापपूर्ण कार्यों में लगाता है, वह अपना गुरु-पद खो देता है। श्रील प्रभुपाद कहा करते थे कि यूरोप में प्रभुसत्ता का अन्त इसीलिए हो गया क्योंकि राजन्य वर्ग अपने पद का दुरुपयोग करते थे। इसी तरह पाश्चात्य जगत में पुरुषों ने स्त्रियों का शोषण और दुरुपयोग किया है और अब लोकप्रिय आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है, जिसमें स्त्रियाँ अपने पतियों की सत्ता का बहिष्कार कर रही हैं। आदर्शतः पुरुषों का आध्यात्मिक जीवन कट्टर होना चाहिए और उन्हें अपनी देख-रेख में रहने वाली स्त्रियों को शुद्ध, निष्ठापूर्ण मार्गदर्शन कराना चाहिए।

सर्वोच्च आध्यात्मिक पद को प्राप्त गोपियाँ समस्त नकारात्मक तथा निषेधात्मक धार्मिक सोच-विचारों से परे थीं। दूसरे शब्दों में, वे परम सत्य की नित्य प्रेमिकाएँ थीं।

अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ।

जुगुप्सितं च सर्वत्र ह्यौपपत्यं कुलस्त्रियः ॥ २६ ॥

**शब्दार्थ**

अस्वर्ग्यम्—स्वर्ग को न ले जाने वाला; अयशस्यम्—अच्छी ख्याति के लिए अनुपयुक्त; च—तथा; फल्गु—नगण्य; कृच्छ्रम्—कठिन; भय-आवहम्—भय उत्पन्न करने वाला; जुगुप्सितम्—निन्दनीय; च—तथा; सर्वत्र—सभी तरह से; हि—निस्सन्देह; औपपत्यम्—परपति के साथ सम्बन्ध, व्यभिचार; कुल-स्त्रियः—अच्छे कुल की अर्थात् कुलीन स्त्री के लिए।

कुलीन स्त्री के लिए क्षुद्र व्यभिचार सदा ही निन्दनीय हैं, इनसे स्वर्ग जाने में बाधा पहुँचती है, उसकी ख्याति नष्ट होती है और ये उसके लिए कठिनाई तथा भय उत्पन्न करनेवाले होते हैं।

श्रवणाद्दर्शनाद्भ्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ।

न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥ २७ ॥

**शब्दार्थ**

श्रवणात्—( मेरे यश का ) श्रवण करने से; दर्शनात्—( मन्दिर में मेरे अर्चाविग्रह का ) दर्शन करने से; ध्यानात्—ध्यान करने से; मयि—मुझमें, मेरे लिए; भावः—प्रेम; अनुकीर्तनात्—बाद में कीर्तन करने से; न—नहीं; तथा—उसी प्रकार से; सन्निकर्षेण—शारीरिक सामीप्य से; प्रतियात—लौट जाओ; ततः—अतः; गृहान्—अपने अपने घरों को।

मेरे विषय में सुनने, मेरे अर्चाविग्रह रूप का दर्शन करने, मेरा ध्यान करने तथा मेरी महिमा का श्रद्धापूर्वक कीर्तन करने की भक्तिमयी विधियों से मेरे प्रति दिव्य प्रेम उत्पन्न होता है। केवल शारीरिक सान्निध्य से वैसा ही फल प्राप्त नहीं होता। अतः तुम लोग अपने घरों को लौट जाओ।

तात्पर्य : श्रीकृष्ण निश्चय ही प्रबल तर्क प्रस्तुत कर रहे हैं।

श्रीशुक उवाच

इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविन्दभाषितम् ।

विषण्णा भग्नसङ्कल्पाश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; विप्रियम्—अरुचिकर, अप्रिय; आकर्ण्य—सुनकर; गोप्यः—गोपियों ने; गोविन्द-भाषितम्—गोविन्द के वचन; विषण्णाः—अत्यन्त खिन्न; भग्न—उदास; सङ्कल्पाः—प्रबल इच्छाएँ; चिन्ताम्—चिन्ता; आपुः—अनुभव किया; दुरत्ययाम्—दुर्लभ्य।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : गोविन्द के इन अप्रिय वचनों को सुनकर गोपियाँ खिन्न हो उठीं।

उनकी बड़ी बड़ी आशाएँ ध्वस्त हो गईं और उन्हें दुर्लभ्य चिन्ता होने लगी।

तात्पर्य : गोपियों की समझ में नहीं आ रहा था कि वे करें तो क्या करें। वे कृष्ण के चरणों पर गिरकर उनकी कृपा की भीख माँगने के लिए फूट-फूटकर रोना चाहती थीं या फिर दूर रहकर अपने घरों को चली जाना चाहती थीं। किन्तु वे इन दोनों में से एक भी नहीं कर पाईं अतः उन्हें अत्यधिक चिन्ता होने लगी।



कृत्वा मुखान्यव शुचः श्वसनेन शुष्यद्-

बिम्बाधराणि चरणेन भुवः लिखन्त्यः ।

अस्त्रैरुपात्तमसिभिः कुचकुङ्कुमानि

तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥ २९ ॥

### शब्दार्थ

कृत्वा—करके; मुखानि—अपने मुखों को; अव—नीचे; शुचः—शोक से; श्वसनेन—आहें भरती; शुष्यत्—सूखते हुए; बिम्ब—लाल बिम्ब फल रूपी; अधराणि—होंठों को; चरणेन—अपने पैरों के अँगूठों से; भुवः—पृथ्वी को; लिखन्त्यः—कुरेदते हुए; अस्त्रैः—आँसुओं से; उपात्त—बहाती हुई; मसिभिः—आँखों के कज्जल से; कुच—स्तनों पर; कुङ्कुमानि—सिन्दूर; तस्थुः—निश्चल खड़ी रहीं; मृजन्त्यः—धोते हुए; उरु—अत्यधिक; दुःख—दुख के; भराः—भार का अनुभव करती हुई; स्म—निस्सन्देह; तूष्णीम्—चुपचाप।

गोपियाँ अपना सिर झुकाये तथा शोकपूर्ण गहरे श्वास से लाल लाल होंठों को सुखाते हुए अपने पैर के अँगूठे से धरती कुरेदने लगीं। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे जिन्होंने अपने साथ उनके कज्जल को बहाते हुए उनके स्तनों पर लेपित सिन्दूर को धो डाला। इस तरह गोपियाँ अपने दुख के भार को चुपचाप सहन करती हुई खड़ी रहीं।

तात्पर्य : गोपियों को लगा कि “यदि कृष्ण हमारे शुद्ध प्रेम से वश में नहीं आये तो हमारा प्रेम शुद्ध नहीं है। और यदि हम कृष्ण से ठीक से प्रेम नहीं कर पातीं तो हमारे जीवन से क्या लाभ?” उनके लाल लाल होंठ इसलिए सूख रहे थे क्योंकि उनके दुख से निकलने वाली साँस गर्म थी। जब सूर्य की धूप पके हुए लाल बिम्ब फलों को सुखा देती है, तो उनमें गहरे धब्बे पड़ जाते हैं और वे नरम पड़ जाते हैं। गोपियों के सुन्दर होठों में भी उसी तरह नरम परिवर्तन आ गया। वे कृष्ण के समक्ष चुपचाप खड़ी रहीं; वे बोलने में असमर्थ थीं।

प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं

कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ।

नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किञ्चित्-

संरम्भगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥ ३० ॥

### शब्दार्थ

प्रेष्ठम्—अपने प्रेमी; प्रिय-इतरम्—प्रिया, प्रेमी का उल्टा; इव—मानो; प्रतिभाषमाणम्—उन्हें सम्बोधित करते हुए; कृष्णम्—कृष्ण को; तत्-अर्थ—उसके लिए; विनिवर्तित—विलग रहकर; सर्व—सभी; कामाः—भौतिक इच्छाएँ; नेत्रे—अपनी आँखों को; विमृज्य—पोंछकर; रुदित—अपना रोना; उपहते—बन्द करके; स्म—तब; किञ्चित्—कुछ; संरम्भ—क्षोभ सहित; गद्गद—अवरुद्ध; गिरः—वाणी; अब्रुवत—बोलीं; अनुरक्ताः—हृदय से लिप्त।

यद्यपि कृष्ण उनके प्रेमी थे और उन्हीं के लिए उन सबों ने अपनी सारी इच्छाएँ त्याग दी थीं

किन्तु वे ही उनसे प्रतिकूल होकर बोल रहे थे। तो भी वे उनके प्रति उसी तरह अनुरक्त बनी रहीं। अपना रोना बन्द करके उन्होंने अपनी आँखें पोंछीं और क्षोभ से युक्त अवरुद्ध वाणी से वे कहने लगीं।

तात्पर्य : अब गोपियाँ कृष्ण को उत्तर देने लगी। उनके प्रति अगाध प्रेम से उत्पन्न क्रोध के कारण उनकी वाणी अवरुद्ध थी और वे उन्हें त्यागने के लिए राजी नहीं थीं। वे नहीं चाहती थीं कि कृष्ण उनका परित्याग करें।

श्रीगोप्य ऊचुः

मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं  
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।  
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्  
देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-गोप्यः ऊचुः—सुन्दरी गोपियों ने कहा; मा—नहीं; एवम्—इस तरह; विभो—हे सर्वशक्तिमान; अर्हति—चाहिए; भवान्—आपको; गदितुम्—बोलना; नृ-शंसम्—कूरतापूर्वक; सन्त्यज्य—पूर्णतया परित्याग करके; सर्व—समस्त; विषयान्—विविध प्रकार की इन्द्रिय तृप्ति; तव—आपके; पाद-मूलम्—चरणों को; भक्ताः—पूजने वाली; भजस्व—कृपया बदले में प्रेम करें; दुरवग्रह—अरे हठीले; मा त्यज—मत त्यागें; अस्मान्—हमको; देवाः—भगवान्; यथा—जिस तरह; आदि-पुरुषः—आदि भगवान्, नारायण; भजते—प्रेम करते हैं; मुमुक्षून्—मुक्ति चाहने वालों को।

सुन्दर गोपिकाओं ने कहा : हे सर्वशक्तिमान, आपको इस निर्दयता से नहीं बोलना चाहिए। आप हमें ठुकरायें नहीं। हमने आपके चरणकमलों की भक्ति करने के लिए सारे भौतिक भोगों का परित्याग कर दिया है। अरे हठीले, आप हमसे उसी तरह प्रेम करें जिस तरह श्रीनारायण अपने उन भक्तों से प्रेम करते हैं, जो मुक्ति के लिए प्रयास करते हैं।

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग  
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।  
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे  
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; पति—पतियों की; अपत्य—सन्तानों; सुहृदाम्—तथा शुभचिन्तक सम्बन्धियों और मित्रों की; अनुवृत्तिः—अनुगमन; अङ्ग—हे कृष्ण; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; स्व-धर्मः—उचित धार्मिक कर्तव्य; इति—इस प्रकार; धर्म-विदा—धर्म को जानने वाले; त्वया—तुम्हारे द्वारा; उक्तम्—कहा गया; अस्तु—होए; एवम्—वैसा ही; एतत्—यह; उपदेश—इस उपदेश के; पदे—असली लक्ष्य; त्वयि—तुममें; ईशे—हे ईश्वर; प्रेष्ठः—अत्यन्त प्रिय; भवान्—आप; तनु-भृताम्—समस्त देहधारी जीवों के लिए; किल—निश्चय ही; बन्धुः—निकट सम्बन्धी; आत्मा—साक्षात् आत्मा।

हे प्रिय कृष्ण, एक धर्मज्ञ की तरह आपने हमें उपदेश दिया है कि स्त्रियों का उचित धर्म है कि वे अपने पतियों, बच्चों तथा अन्य सम्बन्धियों की निष्ठापूर्वक सेवा करें। हम मानती हैं कि यह सिद्धान्त वैध है किन्तु वास्तव में यह सेवा तो आपकी की जानी चाहिए। हे प्रभु, आप ही तो समस्त देहधारियों के सर्वप्रिय मित्र हैं। असल में आप उनके घनिष्ठतम सम्बन्धी तथा उनकी आत्मा हैं।

तात्पर्य : श्रीकृष्ण समस्त जीवों की आत्मा, उनके सर्वप्रिय मित्र तथा शुभचिन्तक हैं। *भागवत* (११.५.४१) में कहा गया है—

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां  
न किङ्करो नायमृणी च राजन्।  
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं  
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ॥

“हे राजन्! जिसने सारे भौतिक कर्तव्यों को त्याग दिया हो तथा सबों को शरण देने वाले मुकुन्द के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ली हो, वह देवताओं, महान् ऋषियों, साधारण जीवों, सम्बन्धियों, मित्रों, मानवमात्र या अपने मृत पूर्वजों का ऋणी नहीं रह जाता। चूँकि ये सारे जीव भगवान् के अंश होते हैं अतः जो व्यक्ति भगवान् की शरण में आ जाता है उसे ऐसे व्यक्तियों की अलग से सेवा नहीं करनी पड़ती।” समस्त जगत के स्वामी भगवान् से ही सत्ता नीचे-नीचे को आती है। पति, माता, सरकारी नेता तथा साधु-सन्त जैसे अधिकारीगण भगवान् से ही अपनी शक्ति तथा सत्ता प्राप्त करते हैं अतः जो लोग उनका अनुगमन करते हैं उनके लिए उन्हें परम सत्य का प्रतिनिधित्व करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति प्राणपण से आदि परम सत्य की प्रेमाभक्ति करता है, तो उसे उपर्युक्त गौण अधिकारियों के माध्यम से परम सत्य की अप्रत्यक्ष रीति से सेवा करने की आवश्यकता नहीं रहती।

किन्तु ईश्वर की शरण में आया जीव भी आध्यात्मिक गुरु की सेवा करता रहता है क्योंकि गुरु भगवान् का अप्रत्यक्ष नहीं अपितु प्रत्यक्ष प्रतिनिधि होता है। प्रामाणिक आचार्य या गुरु वह पारदर्शी माध्यम है, जो शिष्य को कृष्ण के चरणकमलों तक ले जाता है। जब कोई व्यक्ति परम सत्य के प्रत्यक्ष सान्निध्य में रहता है, तो सारे अप्रत्यक्ष अधिकारी निरर्थक हो जाते हैं। गोपियाँ यह मुख्य बात कृष्ण को

जताना चाहती थीं और उनमें से कुछ साहसी युवतियाँ श्रीकृष्ण को उनके ही कथनों द्वारा पराजित करना चाहती थीं जैसाकि इस श्लोक में है।

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्  
नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ।  
तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या  
आशां धृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥ ३३ ॥

#### शब्दार्थ

कुर्वन्ति—दिखलाते हैं; हि—निस्सन्देह; त्वयि—तुम्हारे लिए; रतिम्—आकर्षण; कुशलाः—पटु व्यक्ति; स्वे—अपने हेतु; आत्मन्—आत्मा; नित्य—शाश्वत; प्रिये—प्रिय; पति—अपने पतियों समेत; सुत—पुत्र; आदिभिः—तथा अन्य सम्बन्धियों समेत; आर्ति-दैः—कष्ट पहुँचाने वाले; किम्—क्या; तत्—अतएव; नः—हम पर; प्रसीद—कृपालु हों; परम-ईश्वर—हे परम नियन्ता; मा स्म छिन्द्याः—कृपा करके छिन्न-भिन्न नहीं करें; आशाम्—हमारी आशाओं को; धृताम्—धारण की गई; त्वयि—तुम्हारे लिए; चिरात्—दीर्घकाल से; अरविन्द-नेत्र—हे कमलनयन।

सुविज्ञ अध्यात्मवादीजन सदैव आपसे स्नेह करते हैं क्योंकि वे आपको अपनी असली आत्मा तथा शाश्वत प्रेमी मानते हैं। हमें अपने इन पतियों, बच्चों तथा सम्बन्धियों से क्या लाभ मिलता है, जो हमें केवल कष्ट देने वाले हैं? अतएव हे परम नियन्ता, हम पर कृपा करें। हे कमलनेत्र, आप अपना सान्निध्य चाहने की हमारी चिर-पोषित अभिलाषा आशा को छिन्न मत करें।

चित्तं सुखेन भवतापहतं गृहेषु  
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ।  
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्  
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥ ३४ ॥

#### शब्दार्थ

चित्तम्—हमारे मन; सुखेन—आसानी से; भवता—आपके द्वारा; अपहतम्—चुराये गये; गृहेषु—घर के कामकाज में; यत्—जो; निर्विशति—लीन रहते थे; उत—और भी; करौ—हमारे हाथ; अपि—भी; गृह्य-कृत्ये—घर के काम में; पादौ—हमारे पैर; पदम्—एक पग; न चलतः—नहीं बढ़ रहे; तव—तुम्हारे; पाद-मूलात्—चरणों से दूर; यामः—हम जायेंगी; कथम्—कैसे; व्रजम्—व्रज को वापस; अथ उ—तथा फिर; करवाम—हम करेंगी; किम्—क्या; वा—आगे।

आज तक हमारे मन गृहकार्यों में लीन थे किन्तु आपने सरलतापूर्वक हमारे मन तथा हमारे हाथों को हमारे गृहकार्य से चुरा लिया है। अब हमारे पाँव आपके चरणकमलों से एक पग भी दूर नहीं हटेंगे। हम व्रज वापस कैसे जा सकती हैं? हम वहाँ जाकर क्या करेंगी?

तात्पर्य : श्रीकृष्ण ने अपनी बाँसुरी बजाई तो उसके छिद्रों से निकले हुए मादक संगीत ने युवती

गोपियों के मनों को चुरा लिया था। अब वे कृष्ण के पास अपनी चोरी की गई सम्पत्ति को वापस लेने आई थीं। किन्तु उन्हें अपने मन तभी मिल सकते थे जब श्रीकृष्ण उन्हें अपनाकर उनके साथ युगल क्रीड़ा करते।

श्रीकृष्ण ने शायद उत्तर दिया हो, “किन्तु हे गोपियो! अभी तो तुम लोग घर जाओ। मुझे एक-दो दिन तक स्थिति पर विचार करने दो; तब मैं तुम्हें तुम्हारे मन लौटा दूँगा।” इस सम्भाव्य तर्क के उत्तर में गोपियाँ कहती हैं, “हमारे पाँव एक पग भी चलने से इनकार कर रहे हैं। अतः हमें हमारे मन वापस कर दीजिये और हमें स्वीकार कीजिये, तभी हम जायेंगी।”

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण

हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ।

नो चेद्वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा

ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

सिञ्च—कृपा करके उलेड़िये; अङ्ग—हे प्रिय कृष्ण; नः—हमारे; त्वत्—तुम्हारे; अधर—होंठों के; अमृत—अमृत की; पूरकेण—बाढ़ से; हास—हँसी युक्त; अवलोक—तुम्हारी चितवन से; कल—सुरीला; गीत—तथा ( तुम्हारी वंशी के ) गीत से; ज—उत्पन्न; हृत्-शय—हमारे हृदयों में स्थित; अग्निम्—अग्नि; न उ चेत्—यदि नहीं; वयम्—हम सभी; विरह—वियोग से; ज—उत्पन्न; अग्नि—अग्नि में; उपयुक्त—रखते हुए; देहाः—अपने शरीर; ध्यानेन—ध्यान के द्वारा; याम—जायेंगी; पदयोः—चरणों के; पदवीम्—स्थान तक; सखे—हे मित्र; ते—तुम्हारे।

हे कृष्ण, हमारे हृदयों के भीतर की अग्नि, जिसे आपने अपनी हँसी से युक्त चितवन के द्वारा तथा अपनी वंशी के मधुर संगीत से प्रज्वलित किया है उस पर कृपा करके अपने होठों का अमृत डालिए। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो हे सखा, हम आपके वियोग की अग्नि में अपने शरीरों को भस्म कर देंगी और इस प्रकार योगियों की तरह ध्यान द्वारा आपके चरणकमलों के धाम को प्राप्त करेंगी।

यर्हाम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया

दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ।

अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमञ्जः

स्थातुंस्त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

यर्हि—जब; अम्बुज—कमल सदृश; अक्ष—आँखों वाले; तव—तुम्हारे; पाद—पैरों के; तलम्—नीचे; रमायाः—श्रीमती लक्ष्मीदेवी के लिए; दत्त—प्रदान करते हुए; क्षणम्—उत्सव; क्वचित्—कभी कभी; अरण्य—जंगल में रहने वाले; जन—

लोगों के; प्रियस्य—प्रिय का; अस्प्राक्ष्म—हम छू लेंगी; तत्-प्रभृति—उसी क्षण से आगे; न—कभी नहीं; अन्य—किसी दूसरे व्यक्ति के; समक्षम्—सामने; अञ्जः—प्रत्यक्षतः; स्थातुम्—खड़े रहने के लिए; त्वया—तुम्हारे द्वारा; अभिरमिताः—हर्ष से पूरित; बत—निश्चय ही; पारयामः—समर्थ होंगी।

हे कमलनेत्र, जब भी लक्ष्मीजी आपके चरणकमलों के तलुवों का स्पर्श करती हैं, तो वे इसे उल्लास का अवसर मानती हैं। आप वन-वासियों को अत्यन्त प्रिय हैं अतएव हम भी आपके उन चरणकमलों का स्पर्श करेंगी। उसके बाद हम किसी भी व्यक्ति के समक्ष खड़ी तक नहीं होंगी क्योंकि तब हम आपके द्वारा पूरी तरह तुष्ट हो चुकी होंगी।

श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या

लब्ध्वापि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ।

यस्याः स्ववीक्षण उतान्यसुरप्रयासस्

तद्वद्वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः ॥ ३७ ॥

#### शब्दार्थ

श्रीः—भगवान् नारायण की पत्नी, लक्ष्मीजी; यत्—जिस तरह; पद-अम्बुज—चरणकमलों की; रजः—धूल; चकमे—वांछित; तुलस्या—तुलसीदेवी के साथ; लब्ध्वा—प्राप्त करने के बाद; अपि—भी; वक्षसि—उनके वक्षस्थल पर; पदम्—अपना स्थान; किल—निस्सन्देह; भृत्य—नौकरों के द्वारा; जुष्टम्—सेवित; यस्याः—जिसके ( लक्ष्मी के ); स्व—अपने; वीक्षणे—चितवन के लिए; उत—दूसरी ओर; अन्य—दूसरे; सुर—देवताओं का; प्रयासः—प्रयत्न; तद्वत्—उसी तरह से; वयम्—हम; च—भी; तव—तुम्हारे; पाद—चरण की; रजः—धूल; प्रपन्नाः—शरण के लिए आई हुई हैं।

जिन लक्ष्मीजी की कृपा-कटाक्ष के लिए देवतागण महान् प्रयास करते रहते हैं उन्हें भगवान् नारायण के वक्षस्थल पर सदैव विराजमान रहने का अनुपम स्थान प्राप्त है। फिर भी वे उनके चरणकमलों की धूल पाने के लिए इच्छुक रहती हैं, यद्यपि उन्हें इस धूल में तुलसीदेवी तथा भगवान् के अन्य बहुत से सेवकों को भी हिस्सा देना पड़ता है। इसी तरह हम भी शरण लेने के लिए आपके चरणकमलों की धूल लेने आई हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर गोपियाँ इंगित करती हैं कि भगवान् के चरणों की धूल इतनी जीवनदायिनी तथा प्रेमपूर्ण है कि लक्ष्मीजी भगवान् के वक्षस्थल पर प्राप्त अपने अनुपम स्थान को त्यागकर उनके चरणों में स्थान प्राप्त करने के लिए अन्य अनेक भक्तों के साथ सम्मिलित होना चाहती हैं। इस तरह गोपियाँ कृष्ण से अनुरोध करती हैं कि वे दोहरा मानदण्ड अपना देने के लिए अपने को दोषी न मानें। चूँकि भगवान् ने लक्ष्मी को अपने वक्षस्थल में स्थान देते हुए भी उन्हें अपने चरणकमलों की धूल लेने दी अतः कृष्ण को चाहिए कि वे अपनी सर्वाधिक प्रिय गोपियों को वही अवसर प्रदान करें। गोपियों ने याचना की, “आखिर, आपके चरणकमलों की धूल लेना पूर्णतया वैध है और आपको चाहिए कि

आप हमारे इस प्रयास को प्रोत्साहित करें और हमें दूर भेजने का प्रयास न करें।”

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽन्ध्रिमूलं  
प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।  
त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकाम-  
तप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥ ३८ ॥

#### शब्दार्थ

तत्—अतः; नः—हम पर; प्रसीद—अपना अनुग्रह प्रदर्शित करें; वृजिन—सारे कष्टों को; अर्दन—विनष्ट करने वाले; ते—तुम्हारे; अङ्घ्रि-मूलम्—पाँवों को; प्राप्ताः—आई हुई हैं; विसृज्य—त्यागकर; वसतीः—अपने घरों को; त्वत्-उपासना—आपकी पूजा की; आशाः—आशा से; त्वत्—आपके; सुन्दर—सुन्दर; स्मित—हास; निरीक्षण—चितवन के कारण; तीव्र—अत्यधिक, उत्कट; काम—कामेच्छा से; तप्त—जली हुई; आत्मनाम्—जिनके हृदय; पुरुष—सारे मनुष्यों के; भूषण—आभूषण; देहि—प्रदान करें; दास्यम्—दासता।

अतः हे सभी संतापों का हरण करने वाले, हम पर कृपा करें। आपके चरणकमलों तक पहुँचने के लिए हमने अपने परिवारों तथा घरों को छोड़ा है और हमें आपकी सेवा करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहिए। हमारे हृदय आपकी सुन्दर हासमयी चितवन से उत्पन्न तीव्र इच्छाओं के कारण जल रहे हैं। हे पुरुष-रत्न, हमें अपनी दासियाँ बना लें।

तात्पर्य : जब श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए थे तो गर्ग मुनि ने भविष्यवाणी की थी कि उनमें भगवान् नारायण के सारे ऐश्वर्य प्रकट होंगे। अब गोपियाँ भगवान् से याचना करती हैं कि वे उनपर कृपालु बनकर तथा उन्हें सेवा करने का अवसर देकर उस भविष्यवाणी को पूरा करें जिस तरह कि भगवान् नारायण सदैव अपने प्रिय भक्तों को प्रत्यक्ष सेवा का अवसर प्रदान करते हैं। गोपियाँ बलपूर्वक कहती हैं कि उन्होंने अपने परिवारों तथा घरों को कृष्ण से कोई उच्चतर आनन्द प्राप्त करने के लिए नहीं छोड़ा है। वे तो अपनी शुद्ध भक्ति को प्रकट करके उनसे केवल सेवा करने की भिक्षा माँग रही हैं। गोपियाँ सोचती हैं, “यदि आपके सुख की कामना करते हुए आपके मुख को निहारकर हम किसी तरह सुखी बन सकें तो इसमें क्या हानि है?”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने पुरुषभूषण शब्दों की टीका, “हे पुरुषों में रत्न” के रूप में की है। आपका कहना है कि गोपियों के कहने का आशय था कि, “हे समस्त पुरुषों के रत्न! आप अपने अंगों की नील मणियों से हमारे सुनहले शरीरों को अलंकृत करें।”

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्री-  
 गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ।  
 दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य  
 वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ॥ ३९ ॥

### शब्दार्थ

वीक्ष्य—देखकर; अलक—आपके बालों से; आवृत—ढके; मुखम्—मुख को; तव—तुम्हारे; कुण्डल—कुण्डलों की; श्री—सुन्दरता से; गण्ड-स्थल—गाल; अधर—होठों के; सुधम्—तथा अमृत; हसित—मन्द हँसी समेत; अवलोकम्—चितवन; दत्त—प्रदान करते हुए; अभयम्—अभय; च—तथा; भुज-दण्ड—आपकी शक्तिशाली बाँहें; युगम्—दो; विलोक्य—देखकर; वक्षः—आपका वक्षस्थल; श्री—लक्ष्मी का; एक—एकमात्र; रमणम्—आनन्द स्रोत; च—तथा; भवाम—हम बनना चाहती हैं; दास्यः—आपकी दासियाँ।

बालों के घुंघराले गुच्छों से घिरे हुए आपके मुख, कुण्डलों से विभूषित आपकी गालों, अमृत से पूर्ण आपके होठों तथा आपकी स्मितपूर्ण चितवन को देखकर तथा हमारे भय को भगाने वाली आपकी दो बलिष्ठ भुजाओं को एवं लक्ष्मीजी के आनन्द के एकमात्र स्रोत आपके वक्षस्थल को देखकर हम भी आपकी दासियाँ बनना चाहती हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने कृष्ण के साथ गोपियों के व्यवहार की कल्पना निम्नानुसार की है—

कृष्ण कहते हैं, “तुम मेरी दासियाँ बनना चाहती हो अतः मुझे तुम लोगों को खरीदने के लिए कुछ मूल्य चुकाना है याकि तुम मुफ्त ही अपने को सौंपना चाहती हो?”

गोपियाँ उत्तर देती हैं, “आप हमारी युवावस्था के प्रारम्भ से ही हमें लाखों गुना मूल्य चुकाकर खरीदते रहे हैं। वह मूल्य है आपकी मणि तुल्य हास्यभरी चितवन जो महान् निधि है, जिसको न तो हमने अन्यत्र देखा है, न सुना है।”

“जब आप अपने सिर पर सुनहला साफा बाँध लेते हैं, तो आपकी दासी आपके साफे को थोड़ा थोड़ा खींचकर सही करती है। जब आप उसे बरजने का प्रयास करते हुए, उस पर उंगली भी उठाते हैं, तो वह आपके साफे के नीचे अपना हाथ रखकर आपके मुख को निहारने का अवसर प्राप्त करती है। इस तरह हम दासियाँ आपकी प्रचुर माधुरी का अपने नेत्रों से आस्वाद करेंगी।”

“कृष्ण कहते हैं कि, “तुम्हारे पतियों को हमारा यह व्यवहार सहन नहीं हो सकेगा। वे कंस से जाकर जोरदार शिकायत करेंगे और इस तरह तुम्हारे तथा मेरे दोनों ही के लिए भयावह स्थिति उत्पन्न कर देंगे।”



“गोपियाँ कहती हैं, “किन्तु हे कृष्ण! आपकी दो बलिष्ठ भुजाएँ हमें उसी तरह निर्भय बनाती हैं जिस तरह उन्होंने महेन्द्र के गर्व से हमारी रक्षा करने के लिए आपके द्वारा गोवर्धन पर्वत धारण करते समय बनाया था। वे भुजाएँ अवश्य ही हिंख्रपशु कंस का बध कर देंगी।”

“किन्तु धर्मात्मा होने के कारण मैं अन्यो की पत्नियों को अपनी दासियाँ नहीं बना सकता।”

“हे धर्मात्माओं के मुकुटमणि! भले ही आप गोपों की पत्नियों को अपनी दासियाँ बनाने से इनकार करें किन्तु आपने बलपूर्वक नारायण की पत्नी लक्ष्मी को वैकुण्ठ से ग्रहण कर लिया है और आप उसे अपने वक्षस्थल में बिठाये रहते हैं। उसने लज्जा के मारे आपके वक्षस्थल में एक सोने की रेखा का स्वरूप धारण कर रखा है और वहीं वह आनन्द प्राप्त करती है।”

“यही नहीं, आप चौदहों लोकों में तथा उनके ऊपर के लोकों में, इस ब्रह्माण्ड के परे वैकुण्ठ-लोक में भी किसी भी सुन्दर स्त्री का परित्याग नहीं करते, चाहे वह जो हो या जिसकी हो। हमें यह भलीभाँति ज्ञात है।”

का स्व्यङ्ग ते कलपदायतवेणुगीत-

सम्मोहितार्यचरितान्न चलेत्रिलोक्याम् ।

त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं

यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

का—कौनसी; स्त्री—स्त्री; अङ्ग—हे कृष्ण; ते—तुम्हारा; कल—मधुर; पद—पदों वाले; आयत—निकले हुए; वेणु—तुम्हारी वंशी के; गीत—गीत से; सम्मोहिता—पूर्णतया मोहित; आर्य—सभ्य व्यक्तियों के; चरितात्—उचित आचरण से; न चलेत्—हटता नहीं; त्रि-लोक्याम्—तीनों लोकों में; त्रै-लोक्य—तीनों लोकों का; सौभगम्—कल्याण का कारण; इदम्—यह; च—तथा; निरीक्ष्य—देखकर; रूपम्—सौन्दर्य; यत्—जिसके कारण; गो—गौवें; द्विज—पक्षी; द्रुम—वृक्ष; मृगाः—तथा हिरन; पुलकानि—रोमांच; अबिभ्रन्—हो आया।

हे कृष्ण, तीनों लोकों में ऐसी कौन स्त्री होगी जो आपकी वंशी से निकली मधुर तान से मोहित होकर अपने धार्मिक आचरण से विचलित न हो जाय? आपका सौन्दर्य तीनों लोकों को मंगलमय बनाता है। दरअसल गौवें, पक्षी, वृक्ष तथा हिरण तक भी आपके सुन्दर रूप को देखकर रोमांचित हो उठते हैं।

व्यक्तं भवान्त्रजभयार्तिहरोऽभिजातो

देवो यथादिपुरुषः सुरलोकगोप्ता ।

तन्नो निधेहि करपङ्कजमार्तबन्धो

तप्तस्तनेषु च शिरःसु च किङ्करीणाम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

व्यक्तम्—स्पष्ट है कि; भवान्—आप; व्रज—व्रजवासी के; भय—भय; आर्ति—तथा कष्ट के; हरः—हरने वाले; अभिजातः—उत्पन्न हुआ; देवः—भगवान्; यथा—जिस प्रकार; आदि-पुरुषः—आदि भगवान्; सुर-लोक—देव-लोक का; गोप्ता—रक्षक; तत्—अतः; नः—हम सबों का; निधेहि—कृपा करके रखें; कर—अपना हाथ; पङ्कजम्—कमल सदृश; आर्त—सताया हुआ; बन्धो—हे मित्र; तप्त—जलते हुए; स्तनेषु—स्तनों पर; च—तथा; शिरःसु—सिरों पर; च—भी; किङ्करीणाम्—अपनी दासियों के।

स्पष्ट है कि आपने व्रजवासियों के भय तथा कष्ट को हरने के लिए इस जगत में उसी तरह जन्म लिया है, जिस तरह आदि भगवान् देव-लोक की रक्षा करते हैं। अतः हे दुखियारों के मित्र, अपना करकमल अपनी दासियों के सिरों पर तथा तप्त स्तनों पर रखिये।

श्रीशुक उवाच

इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः ।

प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इन शब्दों में; विक्लवितम्—विकल वाणी; तासाम्—उनकी; श्रुत्वा—सुनकर; योग-ईश्वर-ईश्वरः—योगशक्ति के ईश्वरों के ईश्वर; प्रहस्य—हँसकर; स-दयम्—दयापूर्वक; गोपीः—गोपियों को; आत्म आरामः—आत्म-तुष्ट; अपि—यद्यपि; अरीरमत्—उन्होंने सन्तुष्ट कर दिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : गोपियों के व्याकुल शब्दों को सुनकर हँसते हुए, समस्त योगेश्वरों के भी ईश्वर भगवान् कृष्ण ने उन सबों के साथ कृपा करके आनन्द मनाया यद्यपि वे आत्मतुष्ट हैं।

ताभिः समेताभिरुदारचेष्टितः

प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ।

उदारहासद्विजकुन्ददीधति-

व्यरोचतैणाङ्क इवोडुभिवृतः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

ताभिः—उनके साथ; समेताभिः—एकसाथ मिलकर; उदार—उदार, वदान्य; चेष्टितः—चेष्टाओं वाला; प्रिय—प्यारा; ईक्षण—अपनी चितवन से; उत्फुल्ल—खिले हुए; मुखीभिः—मुखों वाली; अच्युतः—अच्युत भगवान्; उदार—विस्तृत, खुली; हास—हँसी; द्विज—दाँतों की; कुन्द—चमेली के फूल जैसी; दीधतिः—तेज युक्त; व्यरोचत—शानदार लगा; एण-अङ्कः—काले हिरण जैसे धब्बे वाला, चन्द्रमा; इव—सदृश; उडुभिः—ताराओं के द्वारा; वृतः—घिरा हुआ।

एकत्र गोपियों के बीच में अच्युत भगवान् कृष्ण वैसे ही लग रहे थे जैसे कि तारों से घिरा हुआ चन्द्रमा लगता है। इतने उदार कार्यकलापों वाले कृष्ण ने अपनी स्नेहमयी चितवनों से उनके

मुखों को प्रफुल्लित कर दिया और उनकी खिली हुई हँसी से चमेली की कली जैसे दाँतों का तेज प्रकट हो रहा था।

तात्पर्य : अच्युत शब्द सूचित करता है कि उस रात्रिकालीन सम्मेलन में कृष्ण हर गोपी को आनन्द प्रदान करने से चूके नहीं।

उपगीयमान उद्गायन्वनिताशतयूथपः ।

मालां बिभ्रद्वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन्वनम् ॥ ४४ ॥

#### शब्दार्थ

उपगीयमानः— गान किया हुआ; उद्गायन्— अपने से जोर जोर गाते हुए; वनिता— स्त्रियों के; शत— सैकड़ों; यूथपः— सेनानायक; मालाम्— हार या माला; बिभ्रत्— पहने; वैजयन्तीम्— वैजयन्ती नाम के ( पाँच भिन्न रंगों के फूलों से बनी ); व्यचरन्— विचरण करते हुए; मण्डयन्— शोभा बढ़ाते हुए; वनम्— जंगल की।

जब गोपियाँ उनका महिमा-गान करने लगीं तो सैकड़ों स्त्रियों के नायक ने प्रत्युत्तर में जोर जोर से गाना शुरू कर दिया। वे अपनी वैजयन्ती माला धारण किये हुए उनके बीच घूम घूम कर वृन्दावन के जंगल की शोभा बढ़ा रहे थे।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार कृष्ण ने अनेक अद्भुत तानें छोड़ी तथा राग गाये और गोपियाँ उनके पीछे पीछे गाने लगीं। इस अवसर पर कृष्ण के गायन का वर्णन श्रीविष्णु पुराण में प्राप्त होता है—

कृष्णः शरच्चन्द्रमसं कौमुदीं कुमुदाकरम् ।

जगौ गोपीजनस्त्वेकं कृष्णनाम पुनः पुनः ॥

“कृष्ण ने शरदकालीन चन्द्रमा, चाँदनी तथा कमलों से पूरित नदी की महिमा का गायन किया जबकि गोपियों ने केवल उनके नामों का बारम्बार कीर्तन किया।”

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् ।

जुष्टं तत्तरलानन्दि कुमुदामोदवायुना ॥ ४५ ॥

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरु-

नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।

क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्ब्रजसुन्दरीणा-

मुत्तम्भयन्नतिपतिं रमयां चकार ॥ ४६ ॥

#### शब्दार्थ

नद्याः—नदी के; पुलिनम्—तट पर; आविश्य—प्रवेश करके; गोपीभिः—गोपियों के साथ; हिम—शीतल; बालुकम्—बालू के द्वारा; जुष्टम्—सेवा की; तत्—उसका; तरल—लहरों से; आनन्दि—आनन्दित बनाया; कुमुद—कमलों की; आमोद—सुगन्ध लिये हुए; वायुना—वायु के द्वारा; बाहु—अपनी भुजाओं का; प्रसार—फैलाना; परिरम्भ—आलिंगन समेत; कर—उनके हाथों के; अलक—बाल; ऊरु—जाँघें; नीवी—नाभि; स्तन—तथा स्तन; आलभन—स्पर्श से; नर्म—खेल में; नख—अँगुलियों के नाखूनों की; अग्र-पातैः—चिऊँटी से; क्ष्वेल्या—विनोद, खेलवाड़ से भरी बातचीत; अवलोक—चितवन; हसितैः—तथा हँसी से; व्रज-सुन्दरीणाम्—व्रज की सुन्दरियों की; उत्तम्भयन्—उत्तेजित करते हुए; रति-पतिम्—कामदेव को; रमयाम् चकार—आनन्द मनाया ।

श्रीकृष्ण गोपियों समेत यमुना के किनारे गये जहाँ बालू ठंडी पड़ रही थी और नदी की तरंगों के स्पर्श से वायु में कमलों की महक थी। वहाँ कृष्ण ने गोपियों को अपनी बाँहों में समेट लिया और उनका आलिंगन किया। उन्होंने लावण्यमयी व्रज-बालाओं के हाथ, बाल, जाँघें, नाभि एवं स्तन छू छू कर तथा खेल खेल में अपने नाखूनों से चिकोटते हुए उनके साथ विनोद करते, उन्हें तिरछी नजर से देखते और उनके साथ हँसते हुए उनमें कामदेव जागृत कर दिया। इस तरह भगवान् ने अपनी लीलाओं का आनन्द लूटा।

एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ।

आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्यो ह्यधिकं भुवि ॥ ४७ ॥

#### शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; भगवतः—भगवान्; कृष्णात्—कृष्ण से; लब्ध—प्राप्त हुई; मानाः—विशेष आदर; महा-आत्मनः—परमात्मा से; आत्मानम्—अपने आपको; मेनिरे—माना; स्त्रीणाम्—स्त्रियों में; मानिन्यः—मानिनी, गर्वित; हि—निस्सन्देह; अधिकम्—सर्वश्रेष्ठ; भुवि—पृथ्वी पर।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण से ऐसा विशेष आदर पाकर गोपियाँ अपने पर गर्वित हो उठीं और उनमें से हरएक ने अपने को पृथ्वी की सर्वश्रेष्ठ स्त्री समझा।

तात्पर्य : गोपियाँ इसलिए गर्वित थीं क्योंकि उन्हें सर्वश्रेष्ठ पुरुष प्रेमी के रूप में प्राप्त हो चुका था। एक तरह से उन्हें कृष्ण पर गर्व था। साथ ही गोपियों का यह गर्व एक बहाना था, जो कृष्ण की लीला-शक्ति द्वारा उत्पन्न किया गया था जिससे वे विरह के द्वारा उनके प्रति अपना प्रेम प्रगाढ़ कर सकें। इस सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने भरत मुनि के नाटय शास्त्र से उद्धरण दिया है—*न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते*—विरह का अनुभव किये बिना प्रत्यक्ष सम्पर्क का पूरी तरह भोग नहीं हो पाता।

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ।

प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४८ ॥

### शब्दार्थ

तासाम्—उनकी; तत्—वह; सौभग—उनके सौभाग्य के कारण; मदम्—उन्मत्त अवस्था; वीक्ष्य—देखकर; मानम्—मिथ्या गर्व; च—तथा; केशवः—भगवान् कृष्ण; प्रशमाय—कम करने के लिए; प्रसादाय—कृपा करने के लिए; तत्र एव—वहीं पर; अन्तरधीयत—अन्तर्धान हो गये।

गोपियों को अपने सौभाग्य पर अत्यधिक गर्वित देखकर भगवान् केशव ने उनके इस गर्व से उबारना चाहा और उनपर और अधिक अनुग्रह करना चाहा। अतः वे तुरन्त अन्तर्धान हो गये।

तात्पर्य : प्रसादाय शब्द यहाँ सार्थक है। कृष्ण गोपियों की उपेक्षा नहीं करने वाले थे अपितु अन्य विलक्षण व्यवस्था करके उनके प्रेम-व्यापार की शक्ति को तीव्र करना चाहते थे। गोपियों को कृष्ण पर नाज था। जैसाकि हम देखेंगे कि उन्होंने यह व्यवस्था की कि वे राजा वृषभानु की सुन्दर पुत्री के प्रति विशेष कृपा दिखाना चाहते थे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत “रासनृत्य के लिए कृष्ण तथा गोपियों का मिलन” नामक उन्तीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।